chapter.5

अध्याय - 5

काव्य का कलापक्ष

- भाषा (शब्द–शक्ति)
- अलंकार
- प्रतीक विधान
- बिम्ब विधान
- छंद विधान
- मुहावरें तथा लोकोक्तियाँ

कला एक व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत स्वयं 'भावानुभूति' भी समाविष्ट रहती है । कला की विभिन्न विधाओं में 'काव्य-कला' अधिक जीवंत और मार्मिक है क्योंकि वह पाठक या श्रोता के हृदय को सीधे स्पर्श करती है तथा उसकी अतल गहराइयों में एक भाव-आंदोलन पैदा कर देती है । जिस कवि में यह क्षमता जितनी ही अधिक प्रखर होती है , उसकी काव्य-कला उतनी ही उत्कृष्ट होती है । प्रस्तुत अध्याय में भाषा-शैली, अलंकार, छन्द-योजना, बिम्ब विधान, प्रतीक विधान, मुहावरें और लोकोक्तियाँ पर विवेचन के माध्यम से गुप्तजी के काव्यों के कला-पक्ष का आकलन किया है ।

भाषा मनुष्यों के भावों की अभिव्यक्ति एवं विचार-विनिमय का सर्वोत्कृष्ट साधन है । सार्थक शब्द-समूह भाषा के निर्माण का आधार है । शब्दों के भाव-संप्रेषण की जितनी क्षमता होती है, उनके योग से बनी भाषा उतनी ही उत्कृष्ट होती है । शब्द-शक्तियाँ के तीन रुप - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना इन शक्तियों का पूर्ण परिज्ञान रखना होता है, तभी उसे अपनी आकांक्षा के अनुरुप सफलता मिलती है ।(1) काव्य का सारा कथ्य भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होने के कारण काव्य के क्षेत्र में भाषा का महत्व अप्रतित ठहरता है । कवि की अनुभूतियाँ जितनी ही सुगठित होंगी, भाषा उतनी ही मूर्तिमयी होगी । भाषा पर जहाँ कवि का पूर्ण अधिकार अपेक्षित होता है, वहाँ स्वयं भाषा की भी समृद्धि आवश्यक समझी जाती है ।(2)

भारतेन्दु युग के उत्तरार्द्ध में खड़ीबोली काव्य का बीजवपन हुआ । उस काल में मुख्यतः सब ब्रजभाषा के कवि रहे, केवल खड़ीबोली का कवि कोई नहीं हुआ । परन्तु खड़ीबोली काव्यके प्रति सबका आकर्षण बढ़ चला था । द्विवेदीयुग के प्रारंभ से ही नई भाषा के पोषक साहित्य प्रेमियों ने खडीबोली की न्यूनताओं का अनुभव किया और उसके भाग्य से आचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदीजी जैसे महापंडित उसकी सेवा में तत्पर हुए फलतः भारतेन्दु के बाद हिन्दी कविता की भाषा बदल गई । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी जब 'सरस्वती' के सम्पादक हुए तो उन्होंने महसूस किया कि उन साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में काव्य में खड़ीबोली का आगमन उसे नयी स्फूर्ति, नई दिशा, नये आयाम् दे सकता है । उन्होंने तत्कालीन काव्य-भाषा का अपरिमार्जित और अशुद्ध रुप देखा और 'सरस्वती' पत्रिका, साहित्य-सभाओं के अध्यक्षीय भाषणों और अग्र लेखों के द्वारा रचनाकारों को इसके परिमार्जन और परिष्कार के लिए उद्‌बोधित किया । वे खड़ीबोली का परिमार्जित रुप काव्य में लाने के लिए कटिबद्ध थे । अनेक कृतविद्यों को इस कार्य के लिये उत्साहित करते हुए अपनी ओर आकर्षित किया । जो भी खड़ीबोली की कविताएँ प्रकाशनार्थ आती थी उन्हें वे स्वयं ही बड़े परिश्रम से परिमार्जित कर उन्हें व्याकरण सम्मत एवं शुद्ध करके प्रकाशित करते थे तथा भाषा-परिष्कार के सम्बन्ध में कवियों को निर्देश देते थे । रसज्ञरंजन में वे लिखते हैं – 'कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज

में समझ ले और अर्थ को हृदयगम कर सके । पद्य पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है और पढ़ने में जी लगता है ।'[3] द्विवेदी युग के प्रमुख कवि श्री गुप्तजी को सामने लाने में भी द्विवेदीजी का पूरा हाथ रहा है । सुन्दर एवं समीचीन शब्द-योजना के आधार पर ही काव्य-भाषा में लालित्य सरसता एवं माधुर्य-योजना भी होती हैं, संगीतात्मकता पार्दूभूत होती है । आचार्य द्विवेदी काव्य-भाषा के सहज स्वाभाविक और मनोहर रुप के आकांक्षी थे ।[4] कारण कि पाठकों के हृदय में आनन्द-उद्वेग करने में वे कवि द्वारा स्थापित शब्द और वाक्यों का महत्व कम नहीं मानते थे । अपने इस सिद्धान्त के निर्वाह में ये काव्य में प्रयुक्त शब्दावली की अक्षर-मैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए । अर्थ का द्योतक न होकर भी कोई-कोई पद्य केवल अपनी मधुरता ही से पढ़ने वालों के अन्तःकरण को द्रवीभूत कर देता है ।[5]कविता को सरसता बनाने के लिए वे कवियों को रचनात्मक पूरी छूट भी देते थे ।

युग का निर्माण युग निर्माता करते है, और युग-निर्माता वे कहलाते हैं जो अपने युग पर अपने व्यक्तित्व, चरित्र तथा कर्तव्य की गहरी छाप छोड़ जाते हैं । उनकी जीवन-गाथा तथा उनके कार्य-क्लाप तत्कालीन युग के इतिहास का अविभाज्य अंग बन जाते हैं । ऐसे व्यक्ति युग के मुख्य सूत्रधार कहलाते हैं । गुप्तजी ऐसे ही युग-निर्माता है । गुप्तजी को कवित्व प्रतिभा और राम-भक्ति ये दोनों पैतृक रुप में मिली है । गुप्तजी के पिता को जब पता चला कि मैथिलीशरण भी छप्पय लिखता है तो उन्होंने हृदय से कवि होने का आशीर्वाद दिया था । गुप्तजीकी प्रारंभिक पद्य-रचना ब्रजभाषा में हुई । अजमेरीजी ने लिखा – ''भाई मैथिलीशरण ने जब कविता लिखना शुरु किया था तब ब्रजभाषा में ही शुरु किया था । उस समय आप दोहा, चौपाई और छप्पय ही लिखा करते थे ।''[6] ब्रजभाषा के माध्यम से लिखते हुए भी गुप्तजी का अवचेतन मन खड़ी बोली की ओर आकर्षित हो रहा था । सन् 1900 ई. के लगभग जब गुप्तजीने लिखना शुरु किया उस समय हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में समस्यापूर्ति तथा अन्योक्तियों का अधिक प्रचलन था । गुप्तजी की आरंभिक रचनाएँ ''वैश्योपकारक''(कलकत्ता), ''मोहिनी'' (कन्नौज) तथा ''वेंकटेश्वर समाचार'' (बम्बई) में छपती थी । गुप्तजी को अपनी कविता ''सरस्वती' में प्रकाशित हो इसके लिए उनके मनमें लालशा थी । इसलिए उन्होंने द्विवेदीजी को एक रचना जो ब्रजभाषा में थी प्रकाशनार्थ भेज दी । द्विवेदीजीने उसका उत्तर देते हुए कहा कि ''आपकी कविता पुरानी भाषा में लिखी गई है । सरस्वती में हम बोलचाल की भाषा में ही लिखी गई कविताएँ छापना पसन्द करते हैं ।'' द्विवेदीजी के इस अपेक्षा-भरे पत्र से गुप्तजी के हृदय को टेस लगी और लोभ भी हुआ । उन्होंने द्विवेदीजी को पत्र द्वारा उत्तर दिया कि ''इतना खेद मुझे अपनी कविता 'सरस्वती में न प्रकाशित होने का नहीं हुआ, जितना कि 'सरस्वती' के पाठकों की ब्रजभाषा पर तुच्छता का' फिर भी उन्होंने आगे लिखा

- ''महात्मन्! निस्संदेह श्रीमान के चारणाम्बुजों में मेरी हार्दिक भक्ति है । सरस्वती से पूर्ण प्रेम है और खड़ी बोली में यथा सक्य कविता भी रच सकता हूँ । परन्तु क्या किया जाय खेद का विषय है कि इस दास को स्वभाव से ही खड़ीबोली से कुछ अरुचि-सी है । किन्तु श्रीमान जैसे विद्ववर पुरुषों को ही खड़ी बोली रुचिकर है तब मुझ जैसे अशिक्षित, अल्पज्ञ, अविवेकी, अनभिज्ञ एवं अबोध बालक की गणना ही क्या ? अस्तु ··अवकाश पाने पर खड़ीबोली में कविता रचकर श्रीमान की सेवा में अर्पण करूँगा·· ।[7] इस पत्र के उत्तर से हमें यह होता है कि गुप्तजी का ब्रजभाषा के प्रति प्रेम होने पर भी 'सरस्वती' से गुप्तजीका आकर्षण क्यों ? तो उन्हीं के शब्दों में देखिए :-

हिंदी में सरस्वती ही पत्रिका प्रधान थी ।
उसने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी सभी प्रांतो में ।
उसके सुसम्पादक पूज्य द्विवेदीजी थे ।
उनका अनुग्रह भी प्राप्त हुआ था मुझको ।
ओर मेरी पद्य कृति अंगीकृत हो उठी ।
लिखते ही कितने थे तब इस भाषा में ?
पाँचवाँ सवार मैं भी मान ही लिया गया ॥ गुप्तजी ॥[8]

सन् 1903 तक गुप्तजी की अपनी रचनाएँ पूर्णतया ब्रजभाषा में ही करते रहे । उनकी छन्द-साधना तथा पदावली संस्कार का भी यही समय है । गुप्तजी की पद्य-रचना का प्रारंभिक रुप, शिथिल, अनपढ़, अधकच तथा अपरिमार्जित था । गुप्तजीकी प्रथम रचना 'हेमन्त' सरस्वती में जब नवीन रुप में प्रकाशित होकर आई तो वे आश्चर्य मिश्रित हर्ष विभोर हो उठे, क्योंकि वह संशोधित रुप में प्रकाशित हुई थी । 'हेमन्त' में परिवर्तन तो निमित्त मात्र था गुप्तजी सदा-सदा के लिए खडीबोली के हो गए । द्विवेदीजीने हेमन्त का अंतिम पद संशोधित रुप में इस प्रकार किया था ।

मूल रुप	संशोधित रुप
ओढ़े दुशाले अति उष्ण अंग ।	अच्छे दुशाले, सित,पीत, काले ।
धारे गरु वस्त्र हिये उमंग ।।	हैं ओढ़ते बहु वित्त वाले ॥
तो भी करें सब लोग सी-सी ।	तो भी नहीं मन्द, अमन्द सी सी ।
'हेमन्त' में हाय करो बत्ती सी ॥	'हेमन्त' में है कंपती बत्ती सी ॥

गुप्तजी अपनी कविता को इस रुप में देख आचार्य के प्रति श्रद्धा वनत हो गये । इसी प्रथम श्रद्धाने युवक कवि को 'सरस्वती' के आश्रम का सदस्य ही नहीं, अन्तेवासी बना लिया ।''[9] उसके बाद गुप्तजी का उत्साह बढ़ा और भारतीय आंदोलन के साथ ही साथ उनकी कवित्व-शक्ति का विकास हुआ । 'सरस्वती'

पत्रिका द्वारा सरस्वती की आराधना करने लगे । इस तरह हिन्दी काव्य-जगत में गुप्तजी का प्रवेश उस समय हुआ जब द्विवेदीजीने खडी बोली के काव्य-भाषा बनने के आंदोलन का नेतृत्व अपने हाथों में लिया था । आ. नन्ददुलारे वाजपेयीजीने लिखा है – ''युग के विकासोन्मुख जीवन का साक्षात्कार करने और उसे वाणी का परिधान पहनाकर नयनाभिराम बना देने के इस काव्य युग में गुप्तजी जन-g _mO H$àW _ H$W rH$ad H$h{O m` J ß[10] |1901 इ. के लगभग 'सरस्वती' में कालिदास का वसन्तवर्णन प्रकाशित हुआ जिसका गुप्तजीने छायानुवाद किया था । इस छायानुवाद को उस समय बहुत ख्याति प्राप्त हुई थी । उसके पश्चात् द्विवेदीजी ने कलात्मक चित्रों के सम्बन्ध में पद्य-रचना का कार्य दिया जिसे गुप्तजीने उतनी ही योग्यता, परिश्रम और लगन से निभाया जैसी आचार्य आशा करते थे । अनुवादों के द्वारा अनुवादक महाकवि की शैली एवं भाषा सौन्दर्य के गुणों से परिचित होकर अपनी मूल रचनाओं में भी उसे लाने का प्रयास करता है । गुप्तजी की काव्यभाषा आज भी वस्तु निर्देशात्मक बनी हुई है । सन् 1907 के लगभग गुप्तजीने स्वतंत्र विषयों पर रचनाएँ करनी प्रारंभ की । सन् 1908 तक कभी ब्रज और कभी बुन्देलखंडी से प्रभावित संस्कृत के अनावश्यक तथा कृत्रिमभार से लदी और वर्णवृत्तों के माध्यम से रचित दिखाई देती है । कहीं उसमें रीतिकालीन प्रभाव है और कहीं स्पष्टता भाषा परिमांजन की प्रवृत्ति, जो गुप्तजी को निरन्तर खड़ी बोली के वास्तविक रुप की और ला रही थीं ।

खड़ी बोली में वास्तविक अर्थ में खण्ड-काव्य की दिशा में प्रथम मौलिक प्रयत्न गुप्तजी का 'रंग में भंग' नामक काव्य था, जो सन् 1909 में प्रकाशित हुआ ।

''दीखते नर-रत्न ऐसे झोपड़ो में भी कहीं ।
व्योम-चुम्बी राजगृह में जन्मते जैसे नहीं ॥'' [11]

गुप्तजी की खड़ी बोली दिन ब दिन निखरती गई । उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा खड़ीबोली को इतना समृद्ध और समुन्नत बना दिया कि वह सम्पूर्ण देश की सम्पर्क भाषा बन गई और राष्ट्रभाषा होने की अधिकारिणी हो गई । जनता की बोलचाल की भाषा होने से काव्य में इसका स्वागत हुआ । उत्साह और प्रेरणा पाकर जैसे-जैसे इसका प्रयोग बढ़ा, वैसे-वैसे इसमें निखार भी आता गया । सन् 1910 में लिखे गये ''जयद्रथ-वध'' की भाषा को लिजिए :-

''इस युद्ध में जैसा पराक्रम पार्थ का देखा गया,
इतिहास के आलोक में है सर्वथा वह ही नया ।
करता पयोदों को प्रभज्जन शीघ्र अस्तव्यस्त ज्यों,
करने लगे तब ध्वस्त अर्जुन शत्रु-सैन्य समस्त त्यों ।''[12]

इसमें कवि की भाषा अपेक्षाकृत पहले के अब अधिक सुबोधता और स्वच्छता आ गयी थी । जो निश्चय ही, युग को देखते हुए, गुप्तजी के लिए प्रशंसा की बात थी । सन् 1913 में 'भारत-भारती' के प्रकाशित होते ही कवि की भाषा में पर्याप्त निखार आ गया । उदाहरण के लिये –

हाँ, लेखनी ! हृत्पत्र पर लिखनी तुझे है यह कथा,
दृक्कालिमा में डूब कर तैयार होकर सर्वथा ।
स्वच्छन्दता से कर तुझे करने पड़े प्रस्ताव जो,
जग जार्य तेरी नोंक से सोचे हुए हों भाव जो ॥2॥(13)

इस कृति में खडीबोली का सहज रुप सर्वप्रथम देखने को मिला । गुप्तजी की 'भारत-भारती'ने देश के असंख्य नवयुवकों को स्वतंत्रता के लिए प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा प्रदान की । गुप्तजी का व्यक्तित्व राष्ट्रहित में एकाकार हो गया । इस तरह स्वराज्य आंदोलन के साथ ही साथ खड़ी बोली का आंदोलन भी स्वयंमेव मुखरित हो रहा था । 'जयद्रथ-वध' और 'भारत-भारती' इन दोनों काव्यों की भाषा का सौष्ठव वर्षो तक अनुकरणीय हो गया । उसमें खड़ी बोली की गरिमा, जो सुषमा प्रस्तुत हुई वह एक मापदण्ड बन गई, वह क्रमिक रुप से उत्कर्ष की ओर अग्रसर हुई । गुप्तजीकी काव्य का विकास बढ़ता गया वैसे उनकी काव्य की भाषा परिमार्जित होती गई । डा. सत्येन्द्रजीने लिखा है कि उनके 'जयद्रथ-वध' ने ब्रजभाषा के मोह का वध कर दिया ओर 'भारत-भारती' में तो जैसे सुनिश्चित् भारतीय भाषा का सतेज रुप ही खड़ा हो गया । 'पंचवटी' तक आते-आते गुप्तजी अपनी भाषा को एक स्थिर रुप देने में समर्थ होते है । उदाहरणर्थ –

चारूचन्द्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बरतल में ।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोंकों से,
मानो झींम रहे हैं तरु भी मन्द पवन के झोंके से ॥(14)

'पंचवटी' में गुप्तजीने खड़ीबोली का अधिक प्रकृत्त रुप अभिव्यक्त किया है । आगे चलकर 'साकेत' और 'यशोधरा' के निर्माण में गुप्तजी की भाषा पूर्ण प्रौढ़ हो जाती है और अपने अभीष्ट आदर्श को प्राप्त होती है । उदाहरणार्थ –

''अंचल पट कटि में खोंस कछोटा मारे ,
सीता माता थीं आज नई छबि धारे ।
अंकुर-हितकर थे कलश-पयोधर पावन,
जन-मातृ-गर्वमय कुशल बदन मन भावन ।''(15)

महाकवि दिनकरजीने लिखा है – ''वस्तुतः खडी बोली की कविता का बहुत बड़ा इतिहास गुप्तजी की कृतियों का इतिहास है ।'' और कमलाकान्त पाठकजीने लिखा है कि ''गुप्तजी के काव्य को द्विवेदी-युग की चौरधी में ही सक्रिय और सीमित नहीं माना जा सकता, उनकी काव्य-सीमाएँ अधिक विस्तृत गति, अधिक स्वतन्त्र और चिन्तन अधिक व्यापक है । उनकी काव्य-कला उत्तरोत्तर प्रभावशालिनी होती गई है ।''

इस तरह गुप्तजी की भाषा को सजाने एवं सँवारने का सारा श्रेय द्विवदीजी को ही प्राप्त है । द्विवेदीजीने ही गुप्तजी को ब्रजभाषा के परंपरागत प्रबल भाषा-प्रवाह से खींचकर खड़ीबोली के किनारे पर ला खड़ा किया । उस समय गुप्तजी न तो खड़ी बोली के बाह्य रुप से भली-भाँति परिचित थे और न वे उनकी अन्तरात्मा को ही पहचानते थे, किन्तु द्विवेदीजीने गुप्तजी की आरंभिक खड़ी-बोली में लिखित सभी रचनाओं को साज-सँवार कर एक कुशल आचार्य की भांति उन्हें भाषा का सर्वांगीण रुप से परिचित कराया और खड़ी बोली की अन्तरात्मा में प्रवेश कराके उन्हें खड़ीबोली का एक ऐसा यशस्वी कवि बना दिया, जिसकी भाषा अत्यंत परिमार्जित, परिष्कृत एवं परिनिष्ठित खड़ीबोली का सर्वोत्कृष्ट रुप मानी जाती है । आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने भी इनकी भाषा की सफाई की चर्चा करते हुए स्पष्ट लिखा है – ''गुप्तजी की रचनाओं के भीतर तीन अवस्थाएँ लक्षित होती हैं । प्रथमावस्थाभाषा की सफाई है जिन्हें खड़ीबोली के पद्यों की मसृणबन्ध रचना हमारे सामने आती है ।''(16)

गुप्तजी काव्य में सरल भाषा के पक्षपाती थे, किन्तु संस्कृत शब्दों के परित्याग के पक्ष में वे नहीं थे । गुप्तजी का विचार था कि भाषा का सबसे बड़ा गुण सरलता है पर कहीं-कहीं संस्कृत के शब्द लेने ही पड़ते हैं । बिना ऐसा किए हिन्दी कवियों का काम नहीं चलता । उनकी धारणा थी कि अभी हिन्दी में संस्कृत के शब्द और भी सम्मिलित होंगे, बिना ऐसा हुए उसका शब्द-संचय विपुल न होगा ।(17) गुप्तजीका खड़ी बोली में केवल संस्कृत शब्दों का ही आग्रह हो ऐसा नहीं, उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया है कि जो शब्द भिन्न भाषाओं के होने पर भी हमारी भाषा में मिल गए हैं, हमारे ही हो गए हैं । परन्तु यह अवश्य कहा जाएगा कि उनके सामने उसी अर्थ के अपने शब्दों को अभीष्ट समझना हमारे मन की नहीं तो कानों की गुलामी जरुर है । अपनी भाषा को छोड़कर हम अपने भावों की रक्षा नहीं कर सकते ।(18) श्री मैथिलीशरण गुप्तजी के विचार भाषा के सम्बन्ध में निश्चित तथा संतुलित थे । एक स्थान पर उन्होंने कहा है – हमारी भूमि के समान हमारी भाषा का क्षेत्र भी विस्तृत है, तथापि बल उसे सर्वसाधारण का ही है । कोई राज्य अथवा राजबल उसकी पीठ पर नहीं फिर भी उसका भविष्य असन्दिग्ध है, जिस प्रकार हमारी भूमि का उद्धार निश्चित है उसी प्रकार हमारी भाषा का अधिकार भी । हमारे समर्थ मस्तिष्क ज्यों ही राजीनीतिक उलझन से अवकाश पायेंगे त्यों ही उसके विभिन्न भण्डार भरते

विलम्ब न होगा । हिन्दी खड़ीबोली इस बात पर गर्व कर सकती है कि विदेशी शासन के आगे वह किसी उपकार का आभार मानने के लिए बाध्य नहीं है । खड़ीबोली हिन्दी के सम्बन्ध में गुप्तजी का मुसलमानों के प्रति निवेदन भी ध्यान देने योग्य है – ''इस स्थिति में अपने मुसलमान भाईयों से क्या यह प्रार्थना नहीं की जा सकती कि वे संस्कृत के भी कुछ तत्सम और तद्‌भव शब्द स्वीकार कर लें, जैसा बंगाल में उन्होंने उन्हें स्वीकार कर लिया है और एक राष्ट्रभाषा के निर्माण में हमें अपने समुचित्त सहयोग का लाभ लेने दें । 'रानी केतकी की कहानी' के कर्ता के उत्तराधिकारियों से हम क्यों न यह आशा रखें ।''[19] भाषायी एकता के लिए गुप्तजी उत्कंठित, चिन्तित, साथ ही आशान्वित भी दिखाई देते हैं । गुप्तजी का विचार था कि ''इतने दिनों में बोलचाल की भाषा ने कविता की भाषा में अपना जन्मजात अधिकार सिद्ध कर दिखाया है । यह भी कहा जा सकता है कि उसने इस विषय में 'स्वराज्य' प्राप्त कर लिया । जहाँ पहले खड़ी बोली में कविता करने का घोर विरोध किया जाता था वहाँ अब वही सुनाई पड़ता है कि खड़ीबोली में अवश्य कविता की जाय परन्तु ब्रजभाषा को न भुलाया जाय ।''[20] खड़ीबोली काव्य को प्रबल समर्थक होते हुए भी ब्रजभाषा के प्रति गुप्तजी की धारणा कभी संकीर्ण नहीं रही । वे तो उसे हिन्दी कवियों की वैदिक भाषा मानते थे और पूर्वजों की थाती समझकर उसे साहित्य की अमूल्य सम्पति मानकर उसका संरक्षण करना अपना कर्तव्य समझते थे ।[21] खड़ीबोली उनके लिए केवल भारत का भविष्य निर्माण करनेवाली भाषा ही नहीं थी वरन् राष्ट्र-भाषा भी थी । गुप्तजी समय-समय पर यथायोग्य खड़ीबोली में परिवर्तन भी योग्य समझते थे । अतः खड़ीबोली कविता के लिये ब्रज का माधुर्य तथा अवधि का आभिजात्य अधिक देर तक विघ्न न बन सका । [22] फिर भी गुप्तजी टकसाली भाषा के पक्षपाती थे । विशेष रुप से हिन्दी खड़ीबोली के कवियों से वे यही आशा रखते थे कि वे भाषा-विषयक मिश्रण को प्रश्रय न दें । कविता में इस प्रकार के मिश्रण को गुप्तजी असमर्थता तथा हीनता का द्योतक मानते थे । इसीलिए ऐसी स्थिति से बचना ही उनकी सम्मति में श्रेयस्कर था । [23] गुप्तजी का विचार था कि अरबी-फारसी आदि के कुछ शब्द आ भी गये हैं तो उन्हें आत्मसात् कर ही लेना चाहिए, किन्तु उन शब्दों का हिन्दीकरण होना चाहिए ताकि विदेशीपन की झलक दिखाई न दें ।

इस प्रकार गुप्तजी के भाषा-विषयक द्रष्टिकोण को देखने से ज्ञात होता है कि समन्वयवादी होते हुए भी वे अपनी भाषा का परिमार्जित तथा ठोस रुप देखने के आकांक्षी थे । अतः गुप्तजी के जीवनकाल में ही खड़ीबोली का धरातल ठोस, व्यापक और सम्मानित हो चुका था कि कोई भी राष्ट्रभाषा के ऐसे रुप पर गर्व कर सकता है । गुप्तजीने खड़ी बोली के आत्मविश्वास को जगाया, उस आत्म-विश्वासने राष्ट्र के आत्मगौरव को प्रेरणा दी, उसे राष्ट्र की भाषा बनाया, जनता की भाषा बनाया, उसकी आदान-क्षमता और पाचन तथा ग्रहण की सीमाओं को निर्धारित कर व्यापक द्रष्टि से उसमें राष्ट्रभाषा की पूर्ण सामर्थ्य उत्पन्न की ।

शब्द शक्तियाँ :-

जिस कवि में उचित एवं सार्थक शब्दों के प्रयोग की जितनी अधिक क्षमता होती है, उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक उत्कृष्ट होती है, उसकी रचना में उतनी ही अधिक सरसता रहती है और प्रेषणीयता का गुण भी उसी के अनुसार विद्यमान रहता है। वस्तुतः शब्द और अर्थ के स्वाभाविक सम्बन्ध को ही शक्ति कहते हैं । शब्द अपना कार्य शक्ति के बल पर ही सम्पादित करता है । शब्द का कार्य होता है अर्थ का बोध कराना । अतः शब्द को अर्थबोध कराने का कारण और शक्ति को उसका कार्य कहा जाता है। शब्दों का यही कार्य शक्ति के नाम से पुकारा जाता है ।(24) डा. मुन्शीराम शर्मा ने लिखा है - ''शब्द का प्रयोग विभिन्न रुपों मे होता है किन्तु साहित्य में इसका प्रयोग किसी शब्द की उस शक्ति के लिए होता है जिसके ग्रहण अथवा ज्ञान के परिणाम-स्वरुप सांकेतिक, द्योतित या लक्षित व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ अथवा घटना का ज्ञान होता है । यह ज्ञान वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ अथवा व्यंग्यार्थ के रुप में होता है ।''(25) शब्द-शक्ति के तीन भेद हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना ।

गुप्तजी हिन्दी साहित्य के उस निर्माण-युग की देन हैं, जब कि खड़ी बोली काव्य-क्षेत्र में अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए कार्यरत थी । गुप्तजी ने भी विशुद्ध सरल खड़ी बोली में स्पष्ट भाव भरते हुए काव्य-सृष्टि प्रारंभ की थी । उन्होंने काव्य परंपरा से भिन्न विशेष रुप अभिधाशक्ति के सहारे सुन्दर प्रसादगुण सम्पन्न दृश्यावलियाँ विकसित की है । गुप्तजी मुख्यतः भाषा की अभिधा-शक्ति के कवि है वह इसलिए कि अभीधा को ही जनबल प्राप्त होता है । लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया है । भाषा के क्रमिक विकास के साथ उसमें समृद्धि, विदग्धता और वक्रता भी आती गयी है, जिसमें लक्षणा और व्यंजना उद्‌घाटित हुआ है ।

अभिधा :-

गुप्तजी अभिधार्थ की सहज वाचकता को ही काव्य में महत्व देते हैं। क्योंकि अभिधा शब्द के प्रमुख क़ोष जगत अर्थात सामान्य अर्थ की द्योतिका होती है । जिस अभिप्राय से वक्ता बोलता है श्रोता उसी रुप में समझता है, कथन की यही शैली 'अभिधा' कहलाती है । यह शक्ति पाठक या श्रोता को काव्य के शब्दार्थ का बोध कराने सहायक होती है । तदनन्तर ही उसका रस-मग्नता की स्थिति में पहुँचना संभव है । गुप्तजी का मुख्य उद्देश्य भाव की अभिव्यक्ति करना ही रहा है । अतः उनकी रचनाओं में अधिकांश स्थलों पर अभिधा-शक्ति का ही उपयोग हुआ है । अभिधा शक्ति के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :-

दृश्यचित्र :-

खिला सलिल का हृदय पद्म
खिल हंसो की कल-कल में ॥ (यशोधरा)

वातावरण का चित्र :-

गोदावरी नदी का तट वह, ताल दे रहा है अब भी ।
चंचल जल कल-कल कर मानों तान ले रहा है तब भी ॥ (पंचवटी -पृ.13)

ध्वनिचित्र :-

यों ही शंख असंख्य हो गये, लगी न देरी
घनन घनन बज उठी गरज तत्क्षण रण भेरी । (साकेत - पृ. 262)

मनोदशा का चित्र :-

क्या कर सकती थी मरी मन्थरा दासी ।
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी ॥ (साकेत)

कैकेयी के मन में ग्लानि होने के कारण उसे स्वयं ही वेदना होती है इसी मनोदशा का कविने सीधे-सादे ढंग से प्रदर्शित किया है ।

गति-चित्र :-

झोंके-सा झट स्वच्छ मार्ग से रथ उडा
बढ़ मानों कुछ दूर शून्य पथ भी मुड़ा -

ढलमल ढलमल चंचल अंचल, झलमल झलमल तारा
निर्मल जल अन्तः स्तल भर के
उछल उछल कर छल छल भर के
थल थल तरके, कलकल घर के
बिखरता है पारा
सखि निरख नदी की धारा (साकेत- पृ.201)

लक्षणा :-

''मुख्यार्थ का ज्ञान होने के उपरान्त उसमें बाधा पड़ने पर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ का बोध कराने वाले शब्द-व्यापार को लक्षणा शब्द-शक्ति कहतै हैं ।'' लक्षणा शक्ति का अलंकारों से धनिष्ठ से धनिष्ठ सम्बन्ध है । अनेक स्थानों पर मुहावरों के द्वारा लक्षणा शक्ति भाव को प्रभावोत्पादक बनाती है । उक्ति में वैचित्र्य लाने की अनेक शैलियाँ हैं, जिनसे भाषा की लाक्षणिकता प्रकट होती है । इसी कारण लक्षणा शक्ति के भी अनेक भेदोपभेद हो गये हैं । निम्नालिखित कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है :-

शुद्धा लक्षणा :–

जहाँ सादृश्य सम्बन्ध के अतिरिक्त किसी अन्य सम्बन्ध के कारण लक्ष्यार्थ की प्रतीति कराई जाय वहाँ शुद्धा लक्षणा होती है । जैसे –

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
आंचल में है दूध और आँखों में पानी ।। (यशोधरा)

यहाँ सामीप्य सम्बन्ध के आधार पर लक्ष्यार्थ की प्रतीति कराई गई है । अतः शुद्धा लक्षणा है ।

सारोपा लक्षणा :–

श्रुतिपुट लेकर पूर्व स्मृतियाँ खड़ी यहाँ पर खोला
देख आप ही अरुण हुए हैं उनके पाण्डु कपोल ।। (साकेत)

यहाँ चित्रोपमता के द्वारा सजीवता का आरोप है । अतः सारोपा लक्षण है ।

साध्यवसाना लक्षणा :–

जहाँ आरोप का विषय लुप्त हो किन्तु विषयी के माध्यम से ही उसका कथन किया जाय वहाँ साध्यवसाना लक्षणा होती है । जैसे –

'आया यह कौन पंछी नन्द न विपिन में ।'

उपादान लक्षणा :–

जब किसी अन्य अर्थ के लक्षित किये जाने पर भी वाक्यार्थ की सिद्धि की दृष्टि से मुख्यार्थ बना रहे । जैसे –

'लेता है निःश्वास समीरण सुरभि धूल चरती है ।'

यहाँ समीर का निःश्वास भरना मानवीकरण है, परन्तु उसकी अर्थ सिद्धि लक्षणा से ही होती है । अतः यहाँ उपादान लक्षणा है ।

लक्षण लक्षणा :–

जहाँ वाक्यार्थ की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ को छोड़कर केवल लक्ष्यार्थ को ज्ञापित कराया जाय । वहाँ लक्षण लक्षणा होती है । जैसे–

'उड़ा ही दिया मन्थरा ने सुआ ।'

गौणी लक्षणा :–

जहाँ सदृश्य के आधार पर दो वस्तुओं की समानता के कारण लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है वहाँ गौणी लक्षणा होती है । जैसे –

'राक्षसता उनको विलोक कर थी लज्जा से लोहित सी ।''(साकेत)

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY The M. S. University of Baroda

प्रयोजनवती लक्षणा :-

जहाँ शब्द-शक्ति के द्वारा किसी विशेष प्रयोजन के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध होता है वहाँ प्रयोजनवाली लक्षणा होती है । जैसे -

ऊँचा था अभिलाष हाय ! मन का, मैं तुच्छा थी और हूं ।
कुल्या होकर सिन्धु ओर लपकूं, भूली कहाँ ठौर हूँ ।। (पत्रावली)

यहाँ 'रुपवती' अपने को 'कुल्या' और 'राजसिंह' को 'सिन्धु' कहने में मुख्यार्थ बाध होता है , क्योंकि रुपवती की तुच्छता और राजसिंह की महत्ता प्रकट करना चाहता है ।

व्यंजना :-

जब अभिप्रेत अर्थ को ज्ञापित कराने की द्रष्टि से 'अभिधा' और लक्षणा-शब्दशिक्तयाँ असमर्थ हो जाती हैं तो शक्ति की सहायता से अभीष्ट अर्थ की प्रतीति की जाती है उसे व्यंजना शक्ति कहा जाता है ।[26] काव्य में अभिधा और लक्षणा के सहारे व्यंजना तक पहुँचना अनिवार्य होता है, तभी भावोद्बोधन तथा रस बोध की अनुभूति होती है ।[27] व्यंजना, शब्द की वह शक्ति है जिससे भाषा को मनोज्ञता मिलती है और उसकी अर्थवत्ता का विस्तार होता है । व्यंजना द्वारा कवि अपनी निरुपम रमणीयता की सृष्टि करता है ।''गुप्त ने अभिधा के द्वारा वस्तु-वर्णन किया है, लक्षणा के द्वारा उसे मूर्त और चमत्कृत बनाया है तथा संवादों में वक्रत्व नियोजित किया है, पर व्यंजना के द्वारा ही वे भावाभिव्यंजना कर सके हैं ।''[28]

व्यंजना शब्दृशक्ति के दो भेद हैं - शाब्दी व्यंजना तथा आर्थी व्यंजना । इन दोनों के भी दो-दो भेद माने गये है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है ।

अभिधामूला शब्दी व्यंजना :-

करुणे क्यों रोती है, उत्तर में और अधिक तू रोई ।
मेरी विभूति है जो, उसको भवभूति क्यों कहे कोई । (साकेत)

लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना :-

तूम्हारे हंसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती । (साकेत)

अभिधामूला आर्थी व्यंजना :-

''कहाँ जायेंगे ये प्राण लेकर इतना ताप ?
प्रिय के फिरने पर इन्हें, फिरना होगा आप ।।'' (साकेत)

लक्षणामूला आर्थ व्यंजना :-

कादम्बिनी प्रसव की पीड़ा, हंसी तनिक उस ओर ।
क्षिति का छोर छू गई सहसा, वह बिजली की कोर । (यशोधरा)

डा. नगेन्द्र के मतानुसार वाक्-संघर्ष अथवा तर्क करते समय प्रायः व्यंजना का प्रयोग बड़ा सार्थक होता है ।[29] गुप्तजी ने इस व्यंजना का प्रयोग उक्त पंक्तियों में किया है । उनके काव्य में व्यंजना के अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है :-

'मैं पूर्ण करूँगा यज्ञ आज बलि देकर तेरी ।''

यहाँ पर लक्ष्मण ने मेघनाद से यह न कहकर कि मैं तुझे मार डालूँगा, यह कहा कि तेरी बलि देकर यज्ञ पूरा करुँगा । अतः व्यंजना का चमत्कार प्रकट होता है ।

शौर्य वीर्य साहस की प्रतिमा सजीव सी,
मन्दिर समान उस सुन्दर शिविर की। (सिद्धराज)

यहाँ शिविर को मनिदर समान कहने से उसकी पवित्रता तथा उससे भी अधिक उस पात्र की पवित्रता की व्यंजना करना है । इस तरह गुप्तजी काव्य में व्यंजना के भी यथेष्ट उदाहरण मिलते हैं ।

कमलाकान्त पाठक जी ने लिख है - ''लक्षणा का प्रयोग मूर्ति विधान, उक्ति चमत्कार और मार्मिक भावाभिव्यक्ति के लिए किया गया है । विपरीत लक्षणा की योजना तथा वक्रोक्ति विधान भी यत्र-तत्र उपलब्ध होता है । रस-ध्वनि का सन्निवेश कवि के सभी काव्यों में हुआ हैं , पर व्यंजना का शब्दगन चमत्कार पंचवटी तथा नहुष और इनके रचनाकाल के बीच में रची गई कृतियों में विशेष रुप से द्रष्टिगत होता है ।''[30]

निष्कर्ष है कि गुप्तजी के काव्य में शब्द-शक्तियों का भी भाषा की ही भाँति उत्तरोत्तर उत्कर्ष हुआ है ।

अलंकार :-

अलंकार जब काव्य में स्वाभाविक रुप से प्रयुक्त होते हैं तो उसका एक अलग ही सौन्दर्य होता है । उनमें एक नैसर्गिक शोभा का स्फुरण होता है । शब्दालंकार में शब्दों के चमत्कार द्वारा शोभा वृद्धि की जाती है और अर्थालंकार के अर्न्गत अर्थ चमत्कार के कारण काव्य में सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है । अलंकारों के मुख्यतः दो भेद किए जाते है - (1) शब्दालंकार और (2) अर्थालंकार । एक तीसरा भेद और किया जाता है जिसे 'उभयालंकार' कहते हैं। **शब्दालंकारों** को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है - (1) अनुप्रास (2) यमक (3) वक्रोक्ति (4) श्लेषा **अर्थालंकारों** में - उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, प्रतीप, भ्रांतिमान, संदेह, अपहुति, द्रष्टान्त, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक तथा विभावना आदि की गणना की जाती है । वे उनके काव्य में साध्य कभी नहीं बन सके । कविता के सहज प्रवाह में जहाँ आ गए, वहाँ आ गए, गुप्तजी ने उनके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया । उनके काव्य में दोनों भेदों का समावेश मिलता है ।

द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने अलंकारों की स्वाभाविकता पर विशेष बल दिया और उन्हें काव्य के लिए नितांत अनिवार्य नहीं माना । आचार्य द्विवेदीजी के अनुसार - " कविता करने में अलंकारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिए ।"[31] उनका सिद्धान्त था कि अनुप्रास और यमक आदि शब्दालंकार कविता के आधार नहीं, जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जाय, या उससे कोई अपरिमेय हानि पहुँचे ।.... अनुप्रासों को ढूँढ़ने का प्रयास उठाने में समुचित शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है ... अनुप्रासों का विचार न करने से कविता लिखने में सुगमता भी होती है और मनोऽभिलषित अर्थ व्यक्त करने में विशेष कठिनाई भी नहीं पड़ती ।[32] श्री मै. गुप्तजी भी अनुप्रास की स्वाभाविक योजना को तो मान्यता देते हैं और उससे अभिव्यक्ति में लाभ और हानि दोनों ही की संभावना मानते हैं कभी-कभी अनुप्रास के द्वारा भावाभिव्यक्ति उत्पन्न हो जाती है और कभी-कभी उसके मिलाने में भाव की हानि भी हो जाती है । गुप्तजीने मेघनाथ वध में लिखा है कि "सम्भव है कबी-कभी अनुप्रास से कोई बात ध्यान में आ जाय परन्तु कौन कह सकता है कि अनुप्रास के कारण जो भाव सूझा है, उसके बिना उससे भी बढ़ कर भाव न सूझता ? बहुधा ऐसा होता है कि अनुप्रास के लिए भाव भी बदल देना पड़ता है । शब्दों के तोड़-मरोड़ की तो कोई बात ही नहीं । कभी भी अनावश्यक और अनर्थक पद का प्रयोग करने के लिए भी विवश होना पड़ता है ।[33]

शब्दालंकार :-

(1) अनुप्रास :-

अनुप्रास की सार्थकता तभी है जब कि भाव (या रस) का अनुरुप का बन जाता है । भावानुरुप शब्द सृष्टि को वृत्तियों में परिगणित किया जाता है । जैसे -

(1) झाँक न झंझा के झोंके में,
झुककर खुले झरोके से । (पंचवटी - 36)

(2) मिल गई चंदन चिता के ज्वाल-जाला मोद में (रंग में भंग)

(3) अलि कुल कल कलित कमल फूला हो जैसे (कुन्ती और कर्ण)

(4) धाम-धरा-धन सब तज कर मैं (झंकार)

(5) कर्ण कोमल कल कथा सी कह रही (साकेत - पृ.22)

(6) ज्यों प्रफुल्ल वल्ली पर सौ-सौ जुगनू जगमग जगते थे (पंचवटी - पृ.20)

(7) विफल कमल से निकल रहा था अलि दल का कल-गल-गुंजार (जयभारत-पृ.33)

(2) लटानुप्रास :-

पंकज तुम्हें दिए हैं, और किसे पंक-आज मैं दूंगी (साकेत-पृ. 286)

(3) यमक

(1) चित्र भी था चित्र और विचित्र भी,
रह गये चित्रस्थ -से सौमित्र भी । (साकेत, पृ. 35)

(2) वंश-वंश को देते हैं जो वृद्धि विभव संतोष (साकेत, पृ.286)

(4) श्लेष :-

(1) उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से ।
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से । (सा.नवम सर्ग - 269)
(यहाँ रुदन्ती शब्द एक प्रकार की जड़ी तथा रोनेवाली दोनों अर्थो में प्रयुक्त हुआ है ।)

(2) वेग मार्गियों में आ पहुँचा यह निर्वेद कहाँ से । (द्वापर)

(3) तुलसी यह दास कृतार्थ तभी, मुँह में हो चाहे - स्वर्ग न भी
पर एक तूम्हारा पत्र रहे, जो निज मानस-कवि कथा करे -

(5) काकु वक्रोक्ति :-

(1) वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्र-पत्र सुवर्ण के ? (साकेत - पृ. 269)

पुनरुक्ति :-

(1) निर्मल जल अन्त स्तल भर के
उछल उछल कर छल छल करके
थल थल तरके कल कल धर के
बिखराता है पारा-सखि निरख नदी की धारा (साकेत पृ. 302)

(2) धूम धम कर, झूम-झूम कर, थल-थल का रस-पाज ले (यशोधरा-पृ. 115)

(6) वीप्सा :-

(1) हाया आर्य, रहिए, रहिए
मत कहिए, यह मत कहिए । (साकेत पृ. 121)

(2) ओ क्षणभंगुर भव, राम, राम (यशोधरा - पृ.16)

(7) मुद्रालंकार :-

(1) करुणे, क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई -
'मेरी विभूति है जो, उसको 'भव-भूति' क्यों कहे कोई । (सा.नवम सर्ग, पृ.267)

(8) वक्रोक्ति :-

(1) काकु हे आंर्य रहा भारत-अभीप्सित अब भी
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब तक भी (साकेत-पृ.254)

(9) प्रोक्ति प्रयोग :-

यह चमत्कार गुप्तजीने भी दिखाया है । गुप्तजीने प्रायः हिन्दी में अनुदित करके प्रोक्तियों को दिया । उदाहरणार्थ -

'कष्ट के नैव कष्टकम्' का अनुवाद 'कण्टक निकालने को कण्टक' ही चाहिए ।

अर्थालंकार :-

जहाँ अर्थ के कारण काव्य में चमत्कार की सृष्टि होती है , वहाँ अर्थलंकार होते हैं । ये काव्य के चित्र-धर्म कहलाते हैं । इनमें बिना शब्द-सौन्दर्य भी मनोहर नहीं लगता । इनकी योजना के लिए सभी प्रकार के साद्रश्य पर ध्यान रखा जाता है ।

(1) उपमा :- उपमा प्राचीन का पूर्ण निर्वाह है । नख-सिख वर्णन में प्रायः रूढ़ उपमान ही लाये गए हैं।

(1) पड़ी थी बिजली सी विकराल लपेटे थे धन जैसे बाल ।
कौन छेड़े ये काले साँप, अवनि पति उठे अचानक काँप ॥(साकेत, पृ.61)

(2) पझचुत प्रकटित हुई हो पद्मिनी ज्यों अधखिली ! (रंग में भंग)

(3) बस अब उनरे अंग लगूंगी उनकी वीणा-सी बजकर मैं । (झंकार)

(2) चित्रोपमायें :-

(1) पर्तली पड़ी थी उपवीत तुल्य कंधे में
उसमें कटार खोंसी जिसकी समानता
करने को भौंहे भव्य भाल पर भी तनी । (विकाट -भट)

(2) केतु-पट अंचल सद्दश्य है उड़ रहे ।(साकेत,पृ.19)

(3) गोट जड़ाऊ घूंघट की -बिजली-जलदोपम पट की (साकेत, पृ.93)

(3) अमूर्त उपमानों द्वारा गोपियों की विरह-विदग्ध स्थिति का चित्रण करते हुए कविने साम्य मूलक मालोपमा अलंकार का कितना सुन्दर प्रयोग किया है :-

श्रमकर जो क्रम खोज रही हो उस भ्रमशीला स्मृति-सी ,
एक अतर्कित स्वप्न देखकर चकित चौंकती धृति-सी ।
हो होकर भी हुई न पूरी ऐसी अभिलाषा -सी,

कुछ आट की आशा-सी, भट की भावुक की भाष-सी ।
सत्य धर्म-रक्षा हो जिससे ऐसी मार्ग मृषा-सी,
क्लश-कूप में, पाश हाथ में, ऐसी भ्रान्त तृषा-सी ।। (द्वापर)

(4) अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान :-

(1) मन-सा मानिक मुझें मिला है तुझ में उपल-खनी (साकेत, पृ. 280)

(2) त्रिविध पवन ही था, आ रहा जो उन्हीं-सा,
यह धन-रव ही था, छा रहा जो उन्ही-सा । (साकेत. पृ. 294)

(5) अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान :-

(1) पर सरिव, अपने पीछे पड़ी अवधि पित्त पीड़ा-सी । (साकेत, पृ. 300)

(2) उदित से सब हास विलास हैं ,
रुदित-से सब किन्तु उदास हैं । (साकेत, पृ. 330)

(6) मूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमानः-

कंधे ढककर कच छहर रहे थे उनके,
रक्षक तक्षक - से लहर रहे थे उनके ।
मुख-धर्म-विन्दुमय ओस-भरा अम्बुज-सा,
पर कहाँ कंटकित नाल सुपुलकित भुज-सा । (साकेत, पृ. 221)

(7) मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान :-

(1) मृत्यु-सी पड़ी कैकेयी जान (साकेत. पृ.67)

(2) चले पीछे लक्ष्मण भी ऐसे, भाद्र के पीछे आश्विन जैसे । (साकेत पृ.91)

(8) पूर्णोपमा :-

चूमना था भूमितल को अर्ध विधु-सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम के द्दग-जाल बनकर बाल ।
छत्र-सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति आप पूर्ण सनाथ । (साकेत,पृ. 91)

रूपक :-

(1) तुम्हारी वीणा है अनमोल
है विराट जिसके दो लूँबे - ये भूगोल खगोल । (झंकार)

(2) हम हाथी-घोड़े हैं उसके यमुना उसकी पालकी । (द्वापर)

(3) उस रूदँती विरहिणी के रुदन रस के लोप से
- और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से
- वर्ण वर्ग सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के
- क्यों न बनते कवि जनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के (साकेत - पृ.268)

निरंगरूपक :-

(1) भाग्य-भास्कर उदयगिरि पर चढ़ गया । (सा.18)

सांगरूपक :-

सखि; नील नभस्सर में उत्तरा यह हंस अहा ! तरता तरता,
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं निकला जिनकों चरता चरता ।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी चलता उनको धरना धरता,
गढ़ जार्यं न कंटक भूतल के कर डाल रहा डरता डरता । (सा.286)

परम्परित रूपक :-

(1) 'हम मृग वह मद' (द्वापर)

उत्प्रेक्षा :-

उत्प्रेक्षा अलंकार ने भी भाव-व्यंजना में अत्यधिक वृद्धि की है ; जैसे उत्प्रेक्षा का प्रयोग बिना चित्र कल्पना के नहीं होता ।

(1) क्या जाने, क्या देख यहाँ पर यह औत्सुक्य उमड़ना -
मानों अभी किसी झुरमुर से वह है निकला पड़ता । (द्वापर)

(2) चारु-चित्रित भित्तियाँ भी वे बड़ी, देखती ही रह गई मानों खड़ी (साकेत-पृ.29)

(3) मानों झीम रहे हैं तरु भी मन्द पवन के झोंकों से । (पंचवटी, पृ.5)

(4) चंचल ड्जल कल-कल कर मानों तान ले रहा है अब भी (पंचवटी-पृ.13)(सं.2017)

अनन्वय :-

(1) और इसका हृदय किससे है बना ?
वह हृदय ही है कि जिससे है बना। (सा. पृ.27)

सन्देह :-

(1) दीख पड़ा अश्रु मुखी धूल-घुली माला-सी
किंवा धूम-राशि में से जागी हुई ज्वाला-सी (नहुष-पृ.11)

(2) टांगा धनुष कि कल्प-लता पर मन सिज ने झूला डाला - (पंचवटी-पृ.21)

(3) श्याम समाया कालिंदी में, या उसमें कालिंदी ? (द्वापर)

अपह्नुति :-

(1) चिब्रुक देख फिर चरण चूमने चला चित्त चिर-चेरा ।
वे दो ओठ न थे राधे था एक फटा उर तेरा । (द्वापर)

(2) पहले आंखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे
छीटें वही उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु थे । (साकेत-पृ.268)

(3) पानी नहीं, अन्न बरसा - (कृणाल गीत-पृ.91)

उल्लेख :-

(1) कुलिश किसी पर कड़क रहे हैं, आली तोयद तड़क रहे हैं
कुछ कहने के लिए लता के, अरुण अधर वे फड़क रहे हैं (साकेत-पृ.295)

विरोधाभास :-

(1) इस उत्पल से काय में हाय ! उपल से प्राण (साकेत पृ.300)

(2) वेद मार्गियों में आ पहुँचा यह निर्वेद कहाँ से (द्वापर)

(3) हो गया निर्गुण सगुण साकार है ,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है । (साकेत पृ.18)

व्यतिरके :-

(1) आँखों में प्रिय मूर्ति थी भूले थे सब भोग ।
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम प्रयोग (साकेत पृ.268)

(2) कहती मैं चातकि, फिर बोल,
ये खप्टी आँसू की बूँदे दे सकती यदि मोल !
कर सकते हैं क्या मोती भी उस बोलों की तोल ? (सा.पृ.291)

क्रांतिमान :-

(1) नाक का मोती अधर की कांति से, बीज दाड़िम का समझ कर भ्रांति से ।
देख कर सहसा हुआ-शुक मौन है ? सोचता है, अन्य शुक यह कौन है (साकेत, पृ.29)

सजीव अलंकार :-

(1) सोना पाकर भी क्या सुख से तू जीने पायेगी (द्वापर)

स्मरण :-

(1) सुधकर उन छींटो की मेरे अंग आज भी सिहरे । (सा. पृ.288)

दृष्टान्त :-

एक राज्य न हों बहुत से हो जहाँ, राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ ।
बहुत तारे थे अँधेरा कब मिटा, सूर्य का आना सुना जब तब मिटा ।(साकेत-पृ.24)

विशेषोक्ति :-

(1) आँखे और कान रहते वह नहीं देख-सुन सकता,
बोल नहीं सकता मुँह रहते, मन-मन गुन-बुन सकता ।
नहीं तड़प भी पाता, यद्यपि भीतर भरी तड़ित है । (द्वापर)

एकावली अलंकार :-

(1) श्वास हृदय से, हृदय देह से, देह निगड़ से जकड़ ! (द्वापर)

अतिशयोक्ति :-

(1) ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग,
ताल वृन्त से और भी धधठ उठेगी जाग ! (सा - पृ.290)

(2) झोंके-सा झट स्वच्छ मार्ग से रथ उड़ा (साकेत - 131)

अन्योक्ति :-

(1) गजराज पंक में धंसा हुआ,
छटपट करता था फँसा हुआ ।
हथिनियाँ पास चिल्लाती थीं,
वे विवश विकल विल्लाती थीं ।

(2) सफल है उन्हीं धनों का घोष ।
वंश वंश को देने हैं जो, बुद्धि विभव संतोष ।

मानवीकरण :-

(1) अरुण संध्या को आगे ठेल,
देखने को कुछ नूतन खेल,
सजे विधु की बेंदी से भाल,
यामिनी आ पहुँची तत्काल । -सा.पृ.60

विशेषण-विपर्यय :-

(1) कैसी हिलती-डुलती अभिलाषा है कली तुझे खिलने की ।
जैसी मिलती झुलती उच्चाशा है भली मुझे मिलेना की । (सा.पृ.318)

संकर :-

(1) उस दमन्ती विरहिणी के रुदन रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह-विक्षेप से ।
वर्ण वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कवि जनों के ताम्र पत्र सुवर्ण के ।

व्याजस्तुति :-

आत्म ज्ञानहीन वह मुग्धा वही ज्ञान तुम लाये,
धन्यवाद है बड़ी कृपा की, कष्ट उठाकर आये ।

निदर्शना :-

(1) पास पास ये उभय वृक्ष देखो अहा,
फूल रहा है एक दूसरा झड़ रहा ।
है ऐसी ही दशा प्रिये नर लोक की,
कहीं हर्ष की बात और कहीं पर शोक की । (साकेत -पृ.155)

सन्देह :-

खुल गया प्राची दिशा का द्वार है,
गगन-सागर में उठा क्या ज्यार है !
पूर्व के ही भाग्य का यह भाग है ;
या नियति का राग-पूर्ण सुहाग है । (सा-पृ.26)

रूपकातिशयोक्ति :-

(1) चन्द्र हमारे हाथ राहु भी बीच-बीच में झपटे में (द्वापर)
(2) फूल पत्ते हैं गवाक्षों में कढ़े, प्रकृति से ही वे गये मानो गढ़ ।
दामनी भीतर दमकैती है कभी, चन्द्र की माला चमकती है कभी । (सा-पृ.20)
(3) नैश गगन के गात्र में पड़े फफोले हाय ! (सा - पृ. 304)

उभयालंकार :-

गुप्तजी के काव्य में 'उभयालंकार' के प्रयोग भी मिलते है यथा -

किन्तु इनके मद्य से कुछ कुछ अरुण लोचन बड़े,
लाल लाल हुए यथा दो लाल जलजों में जड़े ।

(रंग में भंग - एकदश संस्करण, पद-41, पृ.15)

यहाँ शब्दालंकार यमक और अर्थालंकार उपमा एक दूसरे से अलग अस्तित्व रखते हुए भी तिल-तन्दुल न्याय से मिले दिखाई देते हैं । अतः यहाँ संसृष्टि - उभयालंकार है । राणा लाल सिंह के लाल लाल नेत्र ऐसे लग रहे थे, जैसे कमल में दो लाल जड़े हों । लाल रंग के लाल में यमक और उपमेय मद्य से लाल लोचन के लिए उपमान लाल जड़े कमल में उपमा अलंकार है ।

प्रतीक विधान :-

प्रतीक भाषा की शक्ति को बढ़ाता है । वह सदैव किसी वस्तु-विश्व का ही प्रतिनिधित्व करता है इसलिए सौन्दर्य से अलग रहकर भी शक्ति संपन्न बना रहता है । प्रतीक अचूक रुप से एकार्थ व्यंजक होता है । प्रतीक अधिक परंपरागत और समाज-स्वीकृत सापेक्ष्य होता है ।[34] जिस प्रकार भावों की अभिव्यक्ति का साधन भाषा है उसी प्रकार किसी वस्तु की अभिव्यक्ति का साधन प्रतीक है । ''काव्य में किसी वस्तु या भाव का ही वर्णन किया जाता है , अतः वहाँ प्रतीक की आवश्यकता है । प्रतीक जहाँ एक ओर वक्ता के भावों के वाहक होते है वहाँ श्रोता के लिए वे उन विचारों के सूचक भी। प्रतीक अपने भीतर ऐसा आभास देते हैं जिससे भावों का स्वतः स्फुरन होने लगता है । प्रतीक एक प्रकार का व्यंजक शब्द है, किन्तु वास्तव में हर प्रतीक व्यंजक शब्द होते हुए भी प्रत्येक व्यंजक-शब्द प्रतीक नहीं हो सकता । विशेष संदर्भ में प्रयुक्त होने पर एक शब्द व्यंजना-शक्ति सम्पन्न हो जाता है । उसकी व्यंजना-शक्ति जब पूर्वा पर संबंध तोड़ देने पर भी नष्ट नहीं होती और इस प्रकार जब वह अपनी ही शक्ति से विचार-केन्द्र बन जाता है तो प्रतीक संज्ञा से अभिहित हो जाता है ।''[35] प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ - उपमान का ही दूसरा नाम है । जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है । इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रुप में उपमान होता है ।[36] हिन्दी में प्रतीक शब्द अंग्रेजी के Symbol के समानार्थी रुप में प्रयुक्त किया जाता है । संस्कृत में इसी शब्द का प्रयोग प्रतिमा, चिन्ह अथवा संकेत के लिए हुआ है । कोश के आधार पर प्रतीक का अर्थ है - इस शब्द का व्यवहार किसी ऐसे द्रश्य पदार्थ के लिए होता है जो हमारे मन में उस वस्तु के सादृश्य का प्रतिरुप प्रस्तुत करता है ।[37] दूसरा अर्थ है - केवल मानस प्रत्यक्ष तथा कल्पना के क्षेत्र में आनेवाले विचारों, भावो और अनुभूतियों के द्रश्य या श्राव्य संकेत या चिन्ह प्रतीक कहे जाते है ।[38]

प्रतीकों का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है । मनुष्य अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए निरंतर नवीन से नवीन प्रतीक का विधान करता आ रहा है और उसका यह विधान बहुत कुछ कल्पना शक्ति और बोध-वृत्ति पर निर्भर करता है । गुप्तजी पर द्विवेदीजी की इतिवृत्तात्मक शैली और छायावाद की लाक्षणिकता प्रधान गीत शैली दोनों का ही प्रभाव पड़ा है । गुप्तजी के काव्य-ग्रंथों प्रारंभ से ही प्रतीकों का समावेश होता रहा है । कुछ उदाहरण निम्न लिखित हैं -

वज्र :–

फूलने में पहुँचते ही 'वज्र' 'बल्ली' पर गिरा । (रंग मे भंग - पृ.13)

इस पंक्ति में वज्र 'आपत्ति तथा बल्ली 'महिला' का प्रतीक है । वज्र गिरना हिन्दी भाषा का बड़ा प्रचलित मुहावरा है ।

शूल–फूल :–

है आज कैसा दिन न जानें, देवगण अनुकूल हों,
रक्षा करें प्रभु मार्ग में जो शूल हों ये फूल हों । (जयद्रथ वध-पृ.7)

यहाँ उत्तरा अभिमन्यु के लिए प्रभु से प्रार्थना करती है। शूल-फूल बड़े ही सिद्ध प्रतीक हैं । शूल 'दुःख' तथा फूल 'सुख' का प्रतीक है। वे अपने समानधर्मी पदार्थो का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

उषा का आलोक : अंधकार :–

कुछ न हुआ आते ही आते 'ऊषा का आलोक' ।
'अन्धकार छा गया गेह में, दीख पड़ा बस शोक ।। (किसान - पृ.28/30)

ऊषा आधुनिक काल का बड़ा सशक्त और सजीव प्रतीक है । कवि ने इसका प्रयोग यहाँ विरोध प्रदर्शन के लिये किया है कि जिस घर में ऊषा का आलोक था वहाँ अंधकार छा गया । यहाँ 'ऊषा का आलोक' आनन्द, सुख एवम् समृद्धि तथा 'अन्धकार' पीडा, दुःख एवं निराषा के प्रतीक है ।

मोती :–

है बिखेर देती वसुन्धरा 'मोती' सबके सोते पर । (पंचवटी - पृ.10/7)
यहाँ 'मोती' ओसकण का प्रतीक है । प्रतीक रुप में बड़ा रूढ़ हो गया है।

तरी–अँधेरी–बचार–धार :–

जीर्ण तरी, भूरिभार, देख, अरी, एरी।
कठिन पान्थ, दूरपार, और यह अँधेरी ।।
सजनी उलटी बयार, वेग धरे प्रखर धार ;
पद-पद पर विषद वार, रजनी, घन घेरी ।(यशोधरा - पृ.47)

सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् अपने वियोग-जन्य दिनों को काटती हुई गोपा, निम्नलिखित गीत के व्याज से अपने हृदयागत भावों अपनी मानसिक व्यथाओं का बडी मार्मिकता से उद्धाटन करती है । इस गीत में रूपकात्मक प्रतीक है :-

जीर्ण तरी = दुर्बल शरीर, या दुःख पूर्ण जीवन
अँधरी = निराशापूर्ण स्थिति

उलटी बयार = प्रतिकूल परिस्थितियाँ ।

प्रखर धार = संसार की विषमतायें ।

इन प्रतीकों के प्रयोग से वियोग विधुरा गोपा की स्थिति पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है । जीर्ण-तरी उसके शरीर की दुर्बलता, असमर्थता, विवशता आदि का चित्र तुरन्त हमारे सम्मुख, प्रस्तुत कर देती है । यद्यपि ये पुराने प्रतीक हैं । पर गुप्तजीने इन प्रतीकों को बड़ी कुशलता से यहाँ सजाया है ।

नीलम का प्याला – बुद्‌बुद – हाला :–

किसने मेरी स्मृति को
    बना दिया है निशीथ में मतवाला ।
नीलम के प्याले में,
    बुद्‌बुद देकर उफन रही वह हाला ।

(साकेत - पृ. 301)

उर्मिला चन्द्रिका पूर्ण आकाश को देखकर वियोग की बेला में, विक्षुब्ध है । ये प्रतीक उर्दू साहित्य से गृहीत हैं, जो वियोगिनी नायिका की मानसिक स्थिति का सुन्दरता से उद्‌घाटन करते हैं । यहाँ,

नीमल का प्याला = नीलाआकाश

बुद्‌बुद्‌ = तारे

हाला = चन्द्रिका के प्रतीक है ।

होलिका–दीवाली :–

भीतर रहे होलिका दाह, बाहर दीवाली की चाह ।'' (हिन्दू पृ. 274)

गुप्तजीने होलिका का प्रयोग आन्तरिक पीड़ा, चिन्ता आदि के लिए और दिवाली का प्रयोग आनन्द, उत्साह, उत्फुल्लता के लिए किया है । उनका कहना है कि हमारे हृदय के भीतर चाहे कितनी आन्तरिक पीड़ा एवं चिन्ता की ज्वाला हो, पर बाहर हम सदा उत्साह, एवम् उत्फुल्लता ही प्रदर्शित करें ।

विष–रस :–

विष भी रस बन जाय अन्त में

उसमें इतना रस घोलो । (अनघ-पृ.60)

गुप्तजी कहते हैं कि मनुष्य को इतनी भलाई करनी वांछनीय है कि बुराई, भलाई में परिवर्तित हो जाय ।

विष = बुराई का और रस = भलाई का प्रतीक है ।

दुःशासन और पांचाली :-

दुःशासन खल खींच रहा है ।

पांचाली के बाल हरे । (झंकार - पृ.52)

'झंकार' में राष्ट्रीय प्रतीक भी उपलब्ध हैं, जो अत्याचारी अंग्रेज शासकों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचारों की कितनी सुन्दर अभिव्यंजना हो रही है । यहाँ दुःशासन क्रुर शासक और पांचाली परतंत्र भारत के प्रतीक है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजी के प्रतीकों में अपेक्षाकृत अधिक सजीवता, व्यंजकता, शक्तिमत्ता, विविधता एवं प्रचुरता है । गुप्तजीने प्रतीकों की दृष्टि से खड़ी बोली काव्य को निश्चय ही समृद्ध किया है।

कुल मिलाकर गुप्तजी का कला-पक्ष व्यापक और वैविध्यपूर्ण है । जिस पर उनके व्यक्तित्व की छाप है । वे निर्भीक कलाकार है । भाषा, छंद, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक आदि सभी में उनकी अपूर्व गति है । वे सहजता के साथ सर्वत्र उपस्थित हुए हैं । गोस्वामी तुलसीदासजी के बाद कला पर इतना व्यापक अधिकार रखनेवाला हिन्दी में दूसरा कवि नहीं। उन्होंने खड़ी बोली को काव्योपयुक्त बना कर उसे प्रौढ़ता प्रदान की है ।

बिम्ब-विधान :- (Imagery)

'हिन्दी काव्य' में 'बिम्ब' शब्द नवीन है । शाब्दिक द्रष्टि से इसे अंग्रेजी में Imagery कहा जाता है । पाश्चात्य देशों में जिस कवि या लेखक की इमेजरी जितनी उच्च एवम् उन्नत होती है, वह कवि या लेखक उतना ही महान् माना जाता है । वस्तुतः काव्य-बिम्ब एक प्रकार का भाव-गर्भित शब्द-चित्र है। बिम्ब एन्द्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक अथवा बौद्धिकों, सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है ।[39] डा. नगेन्द्रजीने लिखा है ''काव्य में बिम्ब-योजना का बहुत बड़ा महत्व है । काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानसध्वनि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है ।''[40] वस्तुतः बिम्ब दर्पण में पड़ती हुई उस छाया की तरह है जिसमें हम अपनी चहेरे की रेखाओं से अधिक उससे परे किसी सत्य को देखते हैं ।[41] बिम्ब-विधान से तात्पर्य यह है कि काव्य में आयें हुए उन शब्द-चित्रों से है, जो भावात्मक होते है, जिनका सम्बन्ध मानव के व्यावहारिक जीवन तथा कल्पना के शाश्वत जगत से होता है, जो कवि की सजीव अनुभूति, वासना एवं भावना से परिपूर्ण होते है और गयात्मकता, सजीवता, सुन्दरता एवम् रसात्मकता के कारण जीते-जागते , चलते-फिरते एवम् बोलते-चालते जान

पड़ते हैं । काव्य के इस बिम्ब-विधान में जिस बिम्ब का प्रयोग होता है, उसका गहरा सम्बन्ध मानसिक जगत से स्थापित करते हुए तथा बाह्य जगत से भी उसका सादृस्य सम्बन्ध बनाते हुए श्री सी.डे.लेविस ने स्पष्ट लिखा है कि –

"The poetic image is the human mind claiming kinship with everything that lives and has lived, and making good its claim. In closing so, it also establishes through every metaphor an affinity between external objects." (42)

हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक एवम् निबन्धकार पं. रामचन्द्र शुक्लने लिखा है जो श्री लेविस के उक्त विचारों से बहुत कुछ साम्य रखता है - ''कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्ध के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरुप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता । वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किये रहता है । उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है ।''(43)

बिम्ब अनेक प्रकार के माने गये हैं । जैसे - दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य,घ्रातव्य और रस्य या आस्वाद्य । दृश्य या चाक्षुप बिम्ब आकारवान होते हैं । ये मूर्त उपकरणयुक्त होने के कारण सर्वाधिक स्पष्ट होते हैं। गुप्तजी के काव्यों में प्रत्येक बिम्बों के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। जिनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :-

दृश्य बिम्ब :–

युवक उदारवीर उच्च उदयाद्रि के,
शिखर समान, चित्र भानु सा किरीट था।
सहज प्रसन्न मुख, लोचन विशाल थे ;
भाल पर भौंहे दृढ़ निश्चय ही रेखा सी ॥ (सिद्धराज)

यहाँ जयसिंह के चित्र का कैसा भव्य बिम्ब दृष्टिगोचर होता है । उदयाद्रि के शिखर-समान उच्च, मस्तक पर दृढ निश्चय की रेखाएँ, सूर्यवत् चमकता मुकुट, प्रसन्नमुख विशाल नेत्र आदि एक अनोखा दृश्य-बिम्ब प्रस्तुत कर देते हैं ।

चाक्षुष बिम्ब :–

तरु तले विराजे हुए, शिला के ऊपर,
कुछ टिके धनुष की कोटि टेककर भूपर ।
निज लक्ष्य-सिद्धि-सी तनिक घूमकर तिरछे,
जो सींच रही थी पर्ण कुटी के बिरछे ।
उन सीता को, निज मूर्तिमयी माया को,
यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख-ज्योति ज्यों जागी ॥ साकेत ॥

इस पद्य में राम तथा सीता का सहज स्वाभाविक चित्र अपनी भव्यता में अनुपम है। प्राथमिक पंक्तियों में राम का जो संश्लिष्ट-चित्र कवि ने उभारा है वह अत्यन्त स्वाभाविक, परम मनोहर तथा प्रभावी है । दूसरी पंक्ति में वनवासी राम की मुद्रा का चित्रण तथा बिरछे सींचती सीता की साकार मूर्ति पूर्ण दृश्य-बिम्ब की अनुभूति करती है ।

स्पृश्य बिम्ब :–

गुप्तजीने स्पृश्य बिम्ब के भी सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किए है :-

खिलती हुई कुसुमावली के चपल अलि-दल चूमता ।
शीतल सुगन्ध-समीर भी है धीर-गति से घूमता ॥
यदि तुल्य झरनों के अमल जल में कमल-कुल हंस रहा ।
पर विन्ध्य-गिरि भी आज मानो मत्त गज सा झूमता ॥ (तिलोत्तमा)

इस पद्य में कविने वसन्त-सुषमा का आकर्षक चित्रण किया है । जहाँ विन्ध्य-गिरि तो मत गजवत् भूम ही रहा है, शीतल मन्द-सुगन्ध-समीर भी अपनी मधुर माधवी-गन्ध लिए समस्त प्राणियों को मस्त बना रहा है । यहाँ पर स्पृश्य, द्दश्य, घ्रातव्य बिम्ब का भी आभास होता है ।

घ्रातव्य बिम्ब :–

डा. नगेन्द्र के मतानुसार ''विश्व-काव्य में घ्रातव्य-बिम्ब अत्यंत अल्प मात्रा में प्राप्त होते हैं । कीट्स जैसे कवि के काव्य में भी, जिसका ऐन्द्रिय-संवेदन अत्यंत प्रखर था । इस प्रकार के उदाहरण दो ही चार मिलते हैं और उनका ग्रहण बी सर्वसुलभ नहीं है ।''(44) इस दृष्टि से गुप्तजी के काव्य का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है ।

'तिलोत्तमा' का उदाहरण गुप्तजी की सरस एवम् कर्णप्रिय पदावली का पक्ष पुष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

खिलती हुई कुसुमावली के चपल अलिदल चूमता ।
शीतल सुगन्ध समीर भी है धीर-गति से घूमता ॥
मद तुल्य झरनों के अमल जल में कमल-कुल हंस रहा ।
पर विन्ध्य गिरि भी आज मानो मत्त गज सा झूमता ॥ (तिलोत्तमा)

इस पद्य में घ्रातव्य बिम्ब के चित्रण का प्रयास द्रष्टिगोचर होता है । जो विरला कवियों में ही मिलता है । ध्वन्यात्मकता भी इसकी विशेषता है । विन्ध्याचल की वासन्ती मादकता फूटी पड़ रही है । मादक सुगन्ध बिखेरते हुए सुमन, शीतल मन्द सुगन्ध समीर की सरसराहट और उसीके सहारे मस्ती से झूमते चपल चंचल भ्रमर दल, निर्मल जल में कमनीय कमलों की मुस्कराहट, मधुर माधवी गंध से सराबोर वातावरण सभी कुछ समाविष्ट हुआ है।

बिम्ब निर्माण में मन की कोमल भावना का संस्पर्श होना भी अत्यावश्यक है । गुप्तजीने कहीं-कहीं बिम्ब-विधान और अप्रस्तुत-चयन में नवीन अलंकरण-विधि का प्रयोग किया है । एसे स्थलों पर शैली में चमत्कार और नवीनता की अपेक्षा कवि का उद्देश्य प्रभविष्णुता की वृद्धि और स्पष्ट बिम्ब ग्रहण करना है । अमूर्त के मूर्त बिम्ब ग्रहण इस पद्य में देखिए :-

करुणा हुई थी अब अन्तर्मुखी दोनों की ।
सोख यथा वृष्टिधारा भूमि भर लेती है ॥ (विष्णुप्रिया) ॥

छन्द – विधान :-

काव्य में वर्णो या मात्राओं तथा यति, गति एवं लय से युक्त, मर्यादा पूर्ण रचना को छन्द की अभिधा दी जाती है । वस्तुतः छन्द शब्द का अर्थ है 'बन्धन'|, छन्द कविता का संगीत है, और छन्द काव्य का श्रृँगार है । लय या संगीतात्मकता काव्याभिव्यक्ति का प्राण है । लय एवं गति ही छन्द है । अपनी अनुभूति को, कवि छंद मर्यादा में लयात्मक ढंग से प्रस्तुत करके अधिक हृदयग्राही एवम् प्रभावोत्पादक बना देते है । कवि-श्रेष्ठ पं. सुमित्रानन्दन पन्तने इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है -|'' कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होता है । जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं, जिसके बिना वह अपनी ही हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ो में एक कोमल, सजल, कलरवभर, उन्हें सजीव बना देते हैं ।''[45] छन्द के सुमधुर प्रसाधनों ने

सजकर कविता-कामिनी अद्भूत सौन्दर्य को प्राप्त होती है, उसकी गति में एक मनोहारिणी झंकार आती है, वह कान्त के कोमल स्वर से परिपूर्ण हो जाती है, वह कर्ण-प्रिय होकर श्रोता के हृदय पर अनायास ही अपना अधिकार जमा लेती है तथा उसमें अत्यधिक भाव-प्रेषणीयता आ जाती है ; जिससे उसे भावुक जन शीघ्र ही याद कर लेते हैं । छंदो का एक विशेष गुण है तुक या अन्त्यानुप्रास और यदि इसका सुन्दर प्रयोग किया जाय तो यह काव्य के सौन्दर्य का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाता है ।(46) छन्द -व्यवस्था के उत्तम होने से कविता में एक प्रकार के प्रवाह की सृष्टि होती है, जो पाठकों को अपूर्व आनन्द प्रदान करती है ।

साधारणतः लय एवम् गति वाले छन्द या वृत दो प्रकार के माने गये हैं - वर्णिक तथा मात्रिक । वर्णिक छंदो में वर्णो की गणना होती है और मात्रिक छंदो के मात्राओं अर्थात लघु-गुरु की गणना होती है । हिन्दी ने ये दोनों में से मात्रिक छंद विशेष प्रयोगो में लाये जाते है । मात्रिक छंदों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कविवर पंतजीने लिखा है -''हिन्दी का संगीत केवल छंदो में ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है । वर्ण-वृत्तों की नहरों में उसकी धारा अपना चंचल नृत्य, अपनी नैसर्गिक मुखरता, कल-कल, छल-छल तथा अपने क्रीड़ा, कौतुक, कटाक्ष एक साथ ही खो बैठती है, उसकी हास्य-द्रप्त सरल मुख-मुद्रा गम्भीर, मौन तथा अवस्था से अधिक प्रौढ हो जाती है, उसका चंचल भृकुटि-भंग दिखावटी गरिमा से दब जाता है ।''(47)

आधुनिक काल में वर्णिक छन्द को पुनर्जीवित करने का श्रेय आ.महावीर प्रसाद द्विवेदी ही है । द्विवेदीजीने कई मौलिक एवं अनुदित काव्यों की रचना संस्कृत के बहु-प्रचलित वर्ण-वृत्तों में की तथा कवियों को भी इस ओर प्रेरित किया । 'गुप्तजी' ने इसे प्रश्रय दिया । मात्रिक छंदो का बहुमुखी प्रयोग स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में शायद ही कभी हुआ है । मात्रिक छंद खड़ीबोली हिन्दी की विश्लेषणात्मक प्रकृति से बहुत अनुकूल है । इस प्रकार प्रचलित छंदो के साथ-साथ संस्कृत, बंगला, मराठी और उर्दू के छंदो को ग्रहण कर लेने से छंदो में एक ताजगी आई । संस्कृत वृत्त को अपना लेने से अनुकान्त छंद का आकाश पाकर अभिव्यक्ति को स्वच्छंद उड़ान भरने का अवसर मिला । उन्होंने कहा - ''दोहा, चौपाई, सोरठा, धनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका । कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इसके अतिरिक्ति और छन्द भी वे लिखा करें - पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए । इसी प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अंग्रेजी, और बंगला में विद्यमान हैं, तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा में वे लिखे जाये ।

मैथिलीशरणजी के छंद-विधान में पर्याप्त वैविध्य और व्यापकता है । छंदो के जितने विविध प्रयोग उन्होंने किये उतने शायद ही किसी अन्य कवि को इस क्षेत्र में सफलता मिली हो । काव्य में गीतिका, हरिगीतिका, दोहा, सोरठा, सवैया, धनाक्षरी, द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीड़ित, मालिनी, शिखारिणी, श्रृँगार, पीयूषवर्ष, सुमेरु, पदपादाकुलक, मानव, वियोगिनी, वीर, रोला तथा छप्पय, अरिल्ल, आर्या, आल्हा, चौपाई, मधुमालती, राधिका, चौपैया, तोटक, दिग्पाल, पद्धरि, सार, उल्लाला, आदि हिन्दी के लगभग सभी प्रसिद्ध छंद कुशलता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। गुप्तजी का सभी छंदबद्ध है ।

- साकेत में कविने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदो को अपनाया है । प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द अपनाया है और अंत में छन्द बदल दिया है । नवम सर्ग में विभिन्न प्रकार के छंद अपनाये गये हैं । इसमें 'आर्या' छन्द में भी काव्य-प्रणयन किया गया है।
- यशोधरा जैसी कृतियों में उन्होंने चंपू की पद्धति भी अपनाई है ।
- सिद्धराज तथा विष्णुप्रिया जैसे ग्रंथो में मुक्तक की रचनाएँ प्रणीत की हैं ।
- गुप्तजीने उमरव्यधान की बुराईयों का रुबाई छन्द में ही अनुवाद किया है ।
- 'मेघनाद वध' का अनुवाद अन्त्यानुप्रास छन्दों में किया है ।

कवि द्वारा कुछ नवीन छंदो का भी प्रयोग हुआ है जिनका निर्माण उन्होंने स्वयं किया है । साकेत, सिद्धराज, मेघनाथ वध, आदि पुस्तकों में स्वनिर्मित छंदो का प्रयोग किया गया है । गुप्तजीने जिन छंदो का प्रयोग किया है साधिकार किया है । डा. कमलाकांत पाठक के शब्दों में - ''गुप्तजीने गण, वर्ण और मात्रा के द्वारा नियमित और नियंत्रित अनेक प्रकार के वृत्तों में छन्द सृष्टि या पद्य रचना की है। उनके छन्दों में कहीं गतिहीनता नहीं आने पाई हैं और उन्होंने प्रायः भाव और प्रसंग के अनुकूल छोटे अथवा बड़े छन्दों का चयन किया है । जिस प्रकार गुप्तजीने खड़ीबोली को काव्योपयोगी भाषा बनाया है, उसी प्रकार उन्होंने उसकी पदावली के संगीत को विविध प्रकार की छन्द गतियों में बाँधा है । उनका छन्द-शिल्प हिन्दी की प्रकृति को लिये हुए है । उन्होंने अन्य भाषाओं के छन्दों को प्रायः व्यवहत नहीं किया है, उनके शिल्प को ही हिन्दी के पद्य-बन्धों में प्रयुक्त किया है। किसी आधुनिक कविने कदाचित् हिन्दी की परम्परा में स्वीकृत इतनी अनेक रुपात्मक छन्द-सृष्टि नहीं की है ।''[48] कुछ पमुख छंदो के उदाहरण इस प्रकार है ।

गीतिका :-

(1) हो चुका श्रृंगार जब पूरा यथोचित रीति से ।
ले चलीं वर के निकट सखियां उसे तब प्रीति से ॥ (रंग में भंग)

(14-12 मात्राओँ पर व्यतिक्रम है अतः गीतिका छन्द है ।)

(2) लोक-शिक्षा के लिए अवतार जिसने था लिया,
निर्विकार निरीह होकर नर सद्दश कौतुक किया ।
राम नाम ललाम जिसका सर्व-मंगल धाम है ,
प्रथम उस सर्वेश को, श्रद्धा समेत प्रणाम है ।''(रंग में भंग पृ.5)

(प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ हैं । दूसरे चरन को छोड़कर अन्य चरणों के अन्त में रगण हैं जो गीतिका को कर्णमधुर बना देता है ।)

(3) वह चराचर विश्व अब, मुझको अंधेरा हो गया ।
आपका सोंपा हुआ सर्वस्व मेरा खो गया ।
फिर अंधेरे में रहूँ, सर्वस्व खोकर मैं अहो !
या उसे पाकर सदा को, स्वर्ग-सुख भोगूँ कहो ।

(रंग में भंग- एकादश संस्करण - छन्द 70 , पृ.22)

यहाँ प्रत्येक पद में 26 मात्राएँ हैं, 12 और 14 मात्राओं पर यति है । तीसरी, दसवी, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ लघु हैं । चरण के अंत में लघु गुरु का क्रम है । अतः यह गीतिका का एक आदर्श छन्द है ।

(1) उस रुदन्ती विरहिणी के, रुदन रस के लेप से = 26 मात्राएँ

(इसमें 14 और 12 की यति से 26 मात्राएँ और अन्त में लघुगुरु वर्ण होते हैं ।(साकेत-नवमसर्ग)

(2) जीवन के पहले प्रभात में, आँख खुली जब मेरी = 28 मात्राएँ

इसमें 16 और 12 की यति से 28 मात्राएँ तथा अन्त में दो गुरु होते हैं । (साकेत सर्ग)

(3) धैर्य देकर मुनि ने - 14 मात्रायें

ज्ञान के प्रस्ताव से - 12 मात्रायें अंत में लघुगुरु

14 औहार की यति से 26 मात्रायें हैं, तथा अंत में लघुगुरु वर्ण हैं ।

हरिगीतिका :-

(1) रहते हुए तुमसा सहायक प्रण हुआ पूरा नहीं ।
इससे मुझे है जान पड़ता भाग्य-बल ही सब कहीं ॥
श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे ।
सब शोक अपना भूल कर करतल युगल मलने लगे ॥ जयद्रथ-वध

(2) कर में मुझे तुम शास्त्र देकर, फिर दिखाओं वीरता,
देखूँ, यहाँ फिर मैं तुम्हारी धीरता, गम्भीरता ।
हो सात क्या, सौ भी रहो तो भी रूलाऊँ मैं तुम्हें,
कर पूर्ण रण-लिप्सा अभी क्षण में सुलाऊँ मैं तुम्हे ।

(जयद्रथ-वध, पृ.19)

इसमें प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ हैं, |16 और 12 मात्राओं पर यति है । अंत में चारों पदों में रगण है जिससे छन्द और श्रुति मधुर हो गया है । पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्राएँ लघु हैं ।

हरिगीतिका :-

(1) मानस-भवन में आर्य जन जिस की उतारें आरती । 28 मात्राएँ
भगवान भारतवर्ष में गूजे, हमारी भारती । (भारत-भारती)

(2) आ जन्म नीच अधर्मियों के जो रहे अधिराज हैं ।
देते अहो ! सद्धर्म की वे भी दुहाई आज हैं । (जयद्रथ-वध)

दोनों छंद में 16-|12 की यति से 28 मात्राएँ हैं ।

(3)|''पापी मनुज भी आज मुँह से, राम नाम निकालते,
देखो भयंकर भेड़िये भी, आज आँसू डालते ।
आ जन्म नीच उधमियों के जो रहे अधिराज हैं -
देते अहो ! सद्धर्म की वे, भी दुहाई आज हैं ।''
जयद्रथ-वध, सत्ताईसवाँ संस्करण, पृ.78

गीति :-

(1) ''नाथ, कहाँ जाते हो ?

अब भी यह अन्धकार छाया है ।

हा ! जागकर क्या पाया,

मैंने वह स्वप्न भी गँवाया है ।''

(यशोधरा)

(2) सखीने अंक में खींचा = 14 मात्राएँ

दुःखिनी पड़ सो रही = 12 मात्राएँ (साकेत)

अन्त में परिवर्तन करके 14 और 12 की यति से गीति का छंद अपनाया है ।

दोहा :-

(1) धनुर्वाण वा वेणु लो, श्याम रुप के संग,

मुझ पर चढ़ने से रहा, राम ! दूसरा रंग । '' (द्वापर)

(2) ''अवधि-शिला का उर पर था गुरु भार,

तिल तिल काट रही थी, ''(साकेत, पृ.248)

(3) पृथ्वी की मंदाकिनी = 13 मात्रायें

लेने लगी हिलोर = 11 मात्रायें

स्वर्गगा उसमें उतर = 13 मात्रायें

डूबी अम्बर बोर = 11 मात्रायें और अंत में लघु है ।

प्रथम और तृतीय चरण तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 11-11 मात्रायें होती है अंत में लघु(1) होती है ।(1) - (छन्द प्रभाकर, पृ.56)

द्रुत विलम्बित :-

(1) 'सुख सभी जिसको तुमने दिये,

विविध रुप धरे जिसके लिये ।

न कुछ वस्तु आलभ्य रही जहाँ,

अब हरे वह भारत है कहाँ ।''(स्वदेश संगीत, पृ.34)

(2) विफल, जीवन, व्यर्थ, हा बहा (साकेत)

(3) सखि, विचार कभी उठता यही, अवधि पूर्ण हुई प्रिय आ गये ।
तदपि मैं मिलते सकुचा रही, पर वही, पर आज नए नए ।(साकेत)

वसन्ततिलका :-

(1) रे क्रोध, जो सतत अग्नि बिनाजला वे,
भस्मावशेष नर के तनु को बनावे । (स्वदेश संगीत)
ऐसा न और तुझ-सा जग बीच पाया,
हारे विलोक हम किन्तु न द्दष्टि आया ।''(पद्य प्रबन्ध, पृ.90)

(2) ओहो मरा वह वराक, वसंत कैसा (साकेत-नवम सर्ग)

आर्या :-

नाथ कहाँ जाते हो ? अब भी यह अंधकार छाया है ।
हा, जगकर क्या पाया, मैंने यह स्वप्न भी जगाया है ।।(यशोधरा)

स्त्रगधारा :-

शना ऐसा लिखोंगे, यह अधरित है, की किसी ने हंसी है ।
मानी हैं एक ही वे, बस नस नस में धीरता ही घंसी है ।। (पत्रावली)

शिखरिणी :-

आदर्शी राजा से, वनिज सुत तो शासित हुए ।
खरे भी खोटे से बुध विदुर निष्कसित हुए ।।(जयभारत)

सवैया :-

सखि मैं भव-कानन में निकली बन के इसकी वह एक कली,
खिलते खिलते जिससे मिलने उड़ आ पहुँचा हिल हेम अली ।
मुसकाकार अलि, लिया उसको, तब लों यह कौन बयार चली,
'पथ देख जियो' कह गूँज यहाँ किस ओर गया वह छोड़ छली ?

(साकेत-पृ.23)

रोला :-

रोना गाना बस यही जीवन के दो अंग । - 24 मात्राएँ
एक संग मैं ले रही दोनों का रस रंग ।। - 24 मात्राएँ

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गोरव की बात । - 24 मात्राएँ

पर चोरी चोरी गये यही बड़ा व्याघात ।। 24 मात्राएं (यशोधरा)

यहाँ रोला छन्द है तथा प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ है जिससे कविता में सौन्दर्य झलक उठा है ।

मात्रिक छन्द :-

(1) मिलाप था दूर, अभी धनी का - 17 मात्राएँ
इसमें 9 और 8 की यति से कुल 17 मात्राएँ और अन्त में भगण होता है (1)

(2) निशि की अंधेरी जवनि के , चुप चेतना जब सो रही ।
ने प्रय में तेरे, न जाने, कौन सज्जा हो रही ।।
मेरी नियति न क्षत्रमय, ये बीज अब भी बो रही ।
मैं भार फल की भावना का व्यर्थ ही क्यों छो रही ।।
मैं जागती हूं और अपनी दृष्टि अब भी घो रही ।। (यशोधरा)

यहाँ पर तुक की पुनरावृत्ति से मोहक लयात्मकता तथा रागात्मकता के साथ संगीतमयता उत्पन्न हो गई है । ''द्विवेदी युग के समस्त कवियों में गुप्तजी ही मात्रिक छन्दों का प्रयोग करने वाले कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं । मात्रिक छन्दों के इतने विविध प्रयोग उस समय किसी कवि की कृतियों में नहीं मिलते । उनके द्वारा प्रयुक्त छंदो का आज इतना प्रचार हो गया है कि सामान्य पाठक को लिए यह समझना कठिन है कि उस समय गुप्तजी को मात्रिक छन्दों को सिद्ध करने के लिये कितनी साधना करनी पड़ी होगी ।'[(49)]

मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

मुहावरे :-

मुहावरे रुढि लक्षणा के भीतर आते हैं । इन में मुख्यार्थ का बाध होता है और लक्षणा शक्ति के सहारे उनका प्रसिद्ध अभिप्रेत लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है जो कि नियत अर्थ से रुढिबद्ध होकर मात्र वाच्यार्थ बन जाता है । ''शब्दों या क्रिया-प्रयोगों के योग से कुछ विशिष्ट पद बन जाते हैं जो मुहावरे कहलाते हैं । अर्थात मुहावरा उस गठे हुए पद को कहते हैं जिससे कुठ विशिष्ट लक्षणाजन्य अर्थ निकलता है ।''[(50)] मुहावरे सामान्यतः वाक्यांश होते है किन्तु उनका स्वरुप वाक्य का होता है । उनमें मुख्य क्रिया के रहने से अपने पूर्ण अर्थ की उपस्थिति होती है । वाक्य में प्रयुक्त होने पर वे काल, लिंग और वचन के अनुसार परिविर्तित भी हो जाते हैं ।[(51)] लोकोक्ति तथा मुहावरों का प्रयोग भाषा को सशक्त तथा उसमें सौन्दर्य लाने के लिये किया जाता है । भाषा की कसावट, शक्तिमता, लाक्षणिकता और प्रभावपूर्णता के लिए उनका प्रचुर प्रयोग इसलिये आवश्यक है कि ये उपकरण प्रौढ़ भाषा के सहज गुण है । गुतजी ने अपनी मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों प्रकार की कृतियों में समुचित प्रयोग किया है । मुक्तक काव्य

में चलती भाषा में उनका पर्याप्त प्रयोग तथा प्रबन्ध काव्यों में संपत तथा गंभीर भाषा होने के कारण तदनरुप ही उनका प्रयोग मिलता है । मुहावरें सांकेतिक अर्थमात्र देते हैं जो कि लक्षणा के सहारे ही यथार्थ की पूर्ति करते हैं, तथापि उनसे भाषा चमत्कृत एवं सशक्त हो उठती है । गुप्तजीने मुहावरों का उपयोग संस्कृत निष्ठ रुप, मूल रुप, भिन्न रुप तथा मौलिक रुप में किया है । कहीं-कहीं अंग्रेजी तथा उर्दू के मुहावरों का भी हिन्दीकरण कर लिया है । वस्तुतः मुहावरा सारगर्भित विस्तृत लाक्षणिक अर्थवाला एक शब्दसमूह होता है ।

(1) बाहर से क्या जोड़ूँ-जाड़ूँ (संग्रह करना)
मैं अपना ही पल्ला झाड़ूँ (परित्याग करना आत्म निरीक्षण करना)
तब है, जब वे दाँत उड़ाई (सुरक्षित बनूँ) (यशोधरा, पृ. 12)

(2) मुझको सोती छोड़ गए हो
पीठ फेर मुँह मोड़ गए हो (चले जाना, प्रथक हो जाना, बंधन तोड़ देना)
तुम्हीं जोड़कर तोड़ गए हो (प्रेम में व्याघात करना)
ये आँख मुंद जायें किन्तु खुल जायें जगत के कान (कृणाल गीत -पृ. 58)

उपर्युक्त मुहावरों का गुप्तजीने एक साथ प्रयोग करके वाक्ययोजना की है । यदि प्रसंग वश इनके गंभीर अर्थ का विश्लेषण किया जाय तो गौतमबुद्ध के विराग और यशोधरा के विरह शोक की संपूर्ण कहानी की पुनराख्यान हो सकता है । उसी प्रकार कृणाल की जीवनी पर प्रकाश पड़ सकता है ।

(3) क्या मर्द हैं हम वाह वा ! मुख नेत्र पीले पड़ गए ।
तन सूख कर कांटा हुआ सब अंग ढीले पड़ गये ॥
'मर्दानगी' फिर भी हमारी देख लीजै कम नहीं ।
ये भिन्न भिनाती मक्खियाँ क्या मारते हैं हम नहीं ॥ (भारत-भारती)

इस एक ही पद्य में जहाँ मर्द, मर्दानगी जैसे उर्दू के शब्द आए हैं वहाँ नेत्र तथा अंग जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग भी है । साथ ही तन सूख कर कांटा होना, सब अंग ढीले पड़जाना, मक्खियाँ मारना आदि मुहावरों का भी सफल प्रयोग किया गया है ।

(4) ''इसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा नटी का रंग ।'' (पंचवटी)
(पौ फटना ! ठेठ ग्रामीण मुहावरा है किन्तु अत्यन्त स्वाभाविक है)

(5) किन्तु राम की उज्जवल आंखे सजल सीप सी भर आई (आँखे भर जाना)
(पंचवटी- पृ.4)

(6) मुख कांति पड़ी पीली पीली (मुंह पीला होना) (साकेत पृ. 160)

(7) खुजलाऊँ मै क्या बैठ काय (अपने नाखुनों खुजाना) (यशोधरा - पृ. 10)

(8) बनना मेरा राग न रोग (राग रोग बनना) (यशोधरा- पृ. 35)

(9) नाकों चने चबाने पड़े थे और भी
निष्कृति के हेतु पड़े दाँतों तृण दाबने (सिद्धराज)

(10) आश्चर्य है घट में उन्होंने सिन्धु को है भर दिया (भारत-भारती)

(11) सामने से हट अधिक न बोल, द्विजिहै, रसमें विष मत घोल (साकेत)

(12) एक पन्थ दो काज, सिद्धि का, देख सुअवसर आया हाथ (पद्यप्रबन्ध)

(13) जब तक हमारे पक्ष का जन एक ही जीवन धरे ।
है कौन ऐसा जो तुम्हारा, बाल भी बाँका करे । (जयद्रथ-वध)

(14) जनि उन्होंने शत्रुगण कितने वहाँ मोर नहीं ।
जाते किसी से हैं गिने आकाश के तारें नहीं (भारत-भारती)

(15) छाती फटती हाय ! दुःख दूना मैं पाती । (सैरन्ध्री)

(16) मेरी मलिन गूंदडी में भी है राहुल सा लाल (यशोधरा)

(17) विष बोने से कभी जग में सुफल मिलता नहीं ।
विश्वेश की विधि पर किसी का वश कभी चलती नहीं । (जयद्रथ-वध)

(यह मुहावरा यद्वात्रा निज भाल पट्ट लिखित तन्मार्जितुं कः क्षमः पर आधारित है)

(18) किन्तु सखि ! मूल से भी ब्याज प्यारा होता है । (विष्णुप्रिया)

कहीं–कहीं गुप्तजीने बिलकूल उर्दू ढंग के मुहावरों का भी प्रयोग किया है ।

(1) चोरी शहजोरी साथ आप अपनाते
कविराज आपके चरित न जाने जाते (पद्य-प्रबन्ध)

(2) उड़ती चिड़िया भी आप तुरन्त फँसाते । (पद्य-प्रबन्ध)

(3) तुझे कभी भी करुणा न आती, देखी न ऐसी दृढ और छाती
पर है यहाँ की जो प्रजा, जो है बनी बलि की अजा । (वक-संहार)

यहाँ दृढ और छाती अर्थात 'कलेजा पत्थर का होना' तथा 'बलि की अता' 'बलि का बकरा' बना दिया गया है । कदाचित इसी प्रकार की मनोवृत्ति को कुछ विद्वानों ने मुहावरों का बेढंगा प्रयोग कहा है ।

(4) सुध बुध सब मेरी जी चुराने लगी है ।
कमर झुक गई है दृष्टि जाने लगी है । (किसान)

(5) कहा दासीने धीरज त्याग, लगे इस मेरे मूंह की आग । (साकेत)

(6) किसने सोता हुआ यहाँ का सर्प जगाया । (साकेत)

(7) नहीं नहीं मेरे अनुजों को मुझसे भी लोहा लेना । (जयभारत)

(8) उल्टा-पृष्ठ उसीने तुमको सुरपुर कैसा भाया । (जयभारत)
(यहाँ अंग्रेजी की To Turn page की भावना व्यवहृत हुई है ।)

(9) हाँ अप्सराएँ आप तुम पर रही होंगी वहाँ । (जयद्रथ-वध)

इसके अतिरिक्त गुप्तजीने दाँत उखाडना, धूल भरे हीरे, मूँह ताकना, दाँत पीसना, मन मारना , प्राणों पर खेलना, मुँह न खुलना, लहू बहाना, कागजी धुड़दौड, आँखे फरना, आटे दाल का भाव, बाल की खाल निकालना, सुग्गे पढ़ाना, दाँत दिखाना, बोल मारना, हरा होना, खट्टे अंगूर, पाला पड़ना, सिर घुनना, आँखों में बसना, ओठ काटना, बिगड़ी बात बनाना, नशे में चूर होना, आदि असंख्य मुहावरों का सुष्ठु एवं आकर्षक प्रयोग किया है ।

काव्य-भाषा में मुहावरों का प्रयोग अभिव्यक्ति की सरसता और प्रभविष्णता का सबसे सबल साधन है । 'ऊँची कल्पना-शक्ति, गंभीर अनुभूति यदि काव्य-पुरुष के मन और प्राण हैं तो मुहावरों के सुन्दर प्रयोगों से विभूषित पदावली उसका स्वस्थ शरीर है । संसार-यात्रा में मन और प्राण की उमंगे तभी पूरी हो सकती हैं जब शरीर भी पुष्ट हो ।''[52] भाषा के उत्कर्ष के योग्य किसी भी उपकरण को उन्होंने अधूता नहीं छोड़ा ।

लोकोक्तियाँ :-

लोकोक्तियों का प्रयोग सर्वथा स्वतन्त्र रुप से किसी विषय को केवल स्पष्ट करने के लिये होता है । वाक्य से लोकोक्तियाँ निकालने से वाक्य-विन्यास शोभाविहीन नहीं होता । लोकोक्तियाँ या कहावतों से भाषा में सौन्दर्य-वृद्धि होने पर भी भाषा में प्रवाह तो आता है परन्तु न होने से क्षीण होने की सम्मभावना प्रायः कम ही रहती है । कहावतें महापुरुषों के अनुभव से निकली हुई शिक्षायुक्त उक्तियाँ होती है जो व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी होती है । उनका प्रयोग उचित प्रसंग पर किया जाय तो रचना की भाषा सशक्त और प्रभावपूर्ण होती है तथा प्रसंग के भाव की पुष्टि होती है । गुप्तजी के काव्य में भी लोकोक्तियों का प्रसंगानुसार पर्याप्त प्रयोग हुआ है ।

(1) हिल जाय पत्ता तो कहीं सत्ता बिना इस मूर्ति की (जयद्रथ-वध - पृ.10)

(2) ईश के इंगित के अनुसार, हुआ करते हैं सब व्यापार (साकेत -पृ. 58)

(3) दिन देख नहीं सकते सविशेष किसी जन का सुख भोग कभी
(सभी दिन बराबर नहीं जाते) (साकेत - पृ. 299)

(4) कहते हैं उसको ही अंगुली पकड़ प्रकोष्ट पकड़ लेना(पंचवटी, पृ. 53)

(5) वीर की ही वसुधा है, वीर व्रत पालें हम । (जयभारत)
(यह लोकोक्ति संस्कृत की 'वीर भोग्या वसुन्धरा' से बनाई गई है ।)

(6) लाख चमक ले काँच, और ही कुछ हीरा है । (जयभारत, पृ.311)

(7) पापीजन का पाप उसीका भक्षक होगा (सैरेन्ध्री)

(8) दस भाइयों के साथ मरना भी भला । (वक-संहार)

(9) मरे बिना कोई जीते जी पा न सकेगा स्वर्ग ।(शक्ति)

उपयुर्कत उदाहरणों में लोकोक्तियों के सुष्ठु और संयति प्रयोग है । गद्य-निबंधों में उन्हें अरिवर्तित रुप में प्रयुक्त करना संभव होता है, किन्तु काव्य में उनके लिए उनकी आशा नहीं रहती । अतएव उनके बिना भूल अनुभव से परिवर्तित किए हुए उनके रुप में कुछ परिवर्तन कर देना कवि कौशल की अपेक्षा करता है । इसके अतिरिक्त गुप्तजी परिनिष्ठता काव्य-भाषा के अनुकूल उन्हें थोड़े से हेर-फेर के साथ संस्कृत-निष्ठ भी बना देते हैं । निष्कर्ष यह है कि जिस प्रकार यथा समय भाव-प्रेषणीयता तथा भावाभिव्यंजकता का गुण गुप्तजीकी भाषा में आया है उसी प्रकार मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग से वह और भी अधिक सक्षम तथा सशक्त बनी है । मुहावरें और लोकोक्तियों के अतिरिक्त कवि ने स्वयं भी अनेक सूक्तियाँ लिखी हैं, जो उसके गहन अनुभवों का परिचय देती है ।

सूक्तियाँ :-

सूक्ति का अर्थ है सुभाषित वचन, उत्तम उक्ति अथवा सुन्दर कथन, (53) जिससे वाक्य-विन्यास में सौन्दर्य प्रभाव तथा प्रभविष्णता का समावेश हो सके । गुप्तजीने भी अपने काव्यों में अनेक सूक्तियों का प्रयोग यथास्थान किया है ।

(1) संसार में किसका समय है एक-सा रहता सदा
है निशि-दिया-सी घूमती सर्वत्र विपदा-संपदा
जो आज एक अनाथ है, नर नाथ कल होता वही
जो आज उत्सव-मग्न है, कल शोक से रोता वही (भारत-भारती, पृ.1)

(2) हॅसते प्रथम जो पद्य है तम-पंक में फसते वहीं
वन्हि से भी विरह का होता अधिक उत्ताप है — (रंग में भंग-पृ. 16)

(3) हर्ष की अधिकता भी भार बन जाती है (यशोधरा, पृ.121)

(4) कैतव से परधन मुझ कर धनी बनने बल
औरों को पीछे, आप को पहले छलता हैं छली (जयभारत-पृ.311)

(5) हा ! निजजनों का शोक सब को स्वप्न में भी सालता (जयद्रथ-वध, पृ.55)

(6) न्यायार्थ अपने बन्धुको भी दण्ड देना धर्म है ।। (जयद्रथ-वध, पृ.55)

(7) कहते हैं स्वर्ग नहीं मिलता है बिना मरे (नहुष)

(8) प्रणय अचानक ही अंकुरित होता है (विष्णुप्रिया)

(9) फलता नहीं है कभी अर्जन अधर्म का (अर्जन और विसर्जन)

(10) पापीजन का पाप उसी का भक्षक होगा (सैरन्ध्री)

(11) उचित है जहाँ मिलन का हर्ष वहीं भय संशय मय संघर्ष (विश्ववेदना)

(12) उतना ही आकर्षण होगा जिनी दूरी होगी (द्वापर)

संस्कृत भावानुवाद के रुप में :–

(1) विश्व परिवार है उदार चित्त वालों का । (विष्णुप्रिया)

(2) स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्मभूमि कही गई । (रंग में भंग)

(3) कहते आते थे यही अभी नर देही ।
माता न कुमाता पुत्र कुपुत्र भले ही । (साकेत)

(4) कुल से नहीं सील से ही होता है कोई जन आर्य । (जयभारत)

(5) सुख तो सभी भोग लेते हैं, दुःख धीर ही सहते हैं । (साकेत)

इस प्रकार गुप्तजी ने प्रायः समस्त रचनाओं में अनेकों रुपों में सूक्तियों का सुष्ठु प्रयोग किया है । इससे काव्य में जहाँ सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है वहाँ सभ्य समाजमें भी ऐसा साहित्य सम्मानित होता है ।

----

(1) रत्नाकर की साहित्य-साधना : दानबहादुर पाठक , पृ. 214-215 ।
(2) मैं. गुप्त : व्यक्ति और काव्य : कमलाकान्त पाठक : पृ. 675 ।
(3) रसज्ञरंजन महावीर प्रसाद द्विवेदी
(4) रसज्ञरंजन :महावीर प्रसाद द्विवेदी
(5) रसज्ञरंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी
(6) दैनिक प्रताप, 29-जुलाई-1936 : मुंशी अजमेरी
(7) मै.गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ : दे. ऋषि कौशिक जैमिनी बहुआ
(8) बन्धु श्रद्धाँजली अंक, 25 अप्रैल - 1965 : दे. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : गुप्त :
(9) मै.गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ ऋषि कौशिक जैमिनी बहुआ.
(10) हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी आनन्दकुमार वाजपेयी : पृ. 29
(11) रंग में भंग : मै. गुप्त , पद -38, पृ. 14 ।
(12) जयद्रथ वध : मै. गुप्त , पृ. 16 ।
(13) भारत-भारती : मै. गुप्त, अतीव खण्ड, पृ. 1 ।
(14) पंचवटी : मै. गुप्त : पृ. 5 ।
(15) साकेत : मै. गुप्त ।
(16) हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :, पृ. 616 ।
(17) दे. सरस्वती : काव्य स्वतंत्रता पर समिति, जुलाई, 1912, पृ. 362 ।
(18) साकेत सुधा : रामस्वरुप दुबे , पृ. 254-55 ।
(19) दे. ऋषि कौशिक जैमिनी बहुआ : मै.गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ पृ. 207 ।
(काशी में हीरकजंयति पर दिये गये भाषण से)
(20) गुरुकुल : उपोद्घात, पृ. 4
(21) गुरुकुल : उपोद्घात, पृ. 5
(22) मै.गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ : ऋषि कौशिक जैमिनी बहुआ : पृ. 271 ।
(23) दे लखनऊ के पंचम हिन्दी साहित्य संमेलन पर पढा गया गुप्तजी का भाषण
(24) काव्य तत्व : डा.गंगाचरण त्रिपाठी, पृ.17
(25) साहित्य शास्त्र : डा.मुन्शीराम शर्मा, पृ.19
(26) काव्य तत्व : डा. गंगाचरण त्रिपाठी, पृ. 21 ।
(27) वाल्मीकी और तुलसी : साहत्यिक मूल्यांकन, डा. रामप्रकाश अग्रवाल पृ. 419 ।

(28) मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा. कमलाकान्त पाठक, पृ. 683
(29) साकेत एक अद्ययन : डा.नगेन्द्र, पृ.190
(30) मै.गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा.कमलाकान्त पाठक, पृ.684
(31) असज्ञरंजन : आ.द्विवेदी, पृ.13
(32) वही, पृ.9
(33) मेघनादवघ : मै. गुप्त (निवेदन), पृ.11
(34) कल्पना और छायावाद : केदारनाथ सिंह, पृ.73
(35) आघुनिक हिन्दी कविता में घ्वनि, पृ.5
(36) काव्य बिम्ब : डा.नगेन्द्र, पृ.9
(37) सौन्दर्यशास्त्र और आघुनिक हिन्दी कविता : डा.प्रेमलता बाफना, पृ.44
(38) वही
(39) काव्य बिम्ब : डा.नगेन्द्र, पृ.62
(40) वही, पृ.5
(41) सी.डी. लेविस्थोयिटिक इमेज, पृ.13
(42) The poetic Image by C.Day Lewis : P.33
(43) चिन्तामणि, भाग-1 : पं.रामचन्द्र शुक्ल, पृ.193
(44) काव्य-बिम्ब : डा.नगेन्द्र, पृ.9
(45) पल्लव : - मैथिलीशरण गुप्त, भूमिका, पृ.21
(46) Drink water... English Poetry, P.138
"For rhyme when rightly employed as it has been countless poems by chaucer down to the present time is no more ornament of verse but an organic element of it.
(47) पल्लव : सुमित्रानंदन पंत, पृ.22-23
(48) मै. गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा.कमलाकान्त पाठक, पृ.696
(49) आघुनिक हिन्दी कविता में छन्द योजना : डा.पुत्तुलाल शुक्ल, पृ.201
(50) अच्छी हिन्दी : रामचन्द वर्मा, पृ.61
(51) आघुनिक हिन्दी काव्य - भाषा : डा.रामकुमार सिंह, पृ.42
(52) गुप्तजी की काव्यघारा : गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, पृ.81
(53) संक्षिप्त हिन्दी राष्ट्रसागर : दे.रामचन्द्र वमा पृ.1201